आधुनिक हिंदी में एक नया शब्द अब प्रचलित हो गया है—'छायावाद'। काव्य-शास्त्री इसके कुछ भी अर्थ करें, साधारण हिंदी जनता इसे आधुनिक हिंदी काव्य का साम्यवाची मानती है।

'प्रसाद' छायावाद के महाकवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। छायावाद की त्रिमूर्ति 'प्रसाद'-'निराला'-'पंत' में 'प्रसाद' ही विधाता के रूप में प्रथम आते हैं। पंत में विष्णुप्रभत्व अधिक है, 'निराला' में प्रचंड शक्ति के दर्शन होते है, परंतु कवि 'प्रसाद' आधुनिक हिंदी काव्य के प्रवर्त्तक के नाते इनसे अधिक महान् हैं। काव्य-गंगा को युग के अनुरूप बनाने का भगीरथ-प्रयत्न उन्होंने किया और वे सफल होकर कृती हुए।

इस पुस्तक में कवि 'प्रसाद' के काव्य के विकास की सभी दिशाओं की वैज्ञानिक विवेचना मिलेगी। आधुनिक हिंदी कविता की भूमिका के लिये 'प्रसाद : एक अध्ययन' का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिये।

मूल्य २।)

# कवि प्रसाद : एक अध्ययन

लेखक

रामरतन भटनागर, एम० ए

किताब महल

इलाहाबाद

'प्रसाद' की मित्रता के नाते
कवि की पुण्य-स्मृति मे
प्रिय बन्धु
**श्री वाचस्पति पाठक**
को

# जयशंकर प्रसाद

हिंदी के आधुनिक कवियों में श्री जयशङ्कर प्रसाद अग्रगण्य थे। एक तरह से नए काव्य की दाग-बेल उन्होंने ही डाली और चतुर्थ शताब्दी के परिश्रम से उसकी रूपरेखा स्थिर की। 'छायावाद' की विभिन्न प्रवृत्तियों को 'प्रसाद' के काव्य और कला के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

इन्हीं कृती कवि के काव्य की अनेक दिशाओं की समालोचना इस पुस्तक का विषय है। 'इंदु' (१६०६) में प्रकाशित प्रसाद की आरंभिक रचनाओं से लेकर 'कामायिनी' (१६३६) तक के सारे सप्तकों को इन पृष्ठों मे परखा गया है। 'कामायिनी' और 'आँसू' की विशद व्याख्या इस पुस्तक की नई विशेषता है। 'आँसू' के पहले संस्करण की टीका भी दे दी गई है, जिससे सुधी पाठकों के लिए उसमें अस्पष्टता न रहे।

आशा है, यह पुस्तक 'प्रसाद' के काव्य को सुबोध और सरल बनायेगी। छायावाद-काव्य के एक प्रधान स्तंभ की रचनाओं की समीक्षा आपके हाथ में है।

गांधीजयन्ती, १६४६ रामरतन भटनागर

# तालिका

# १

# भूमिका : 'छायावाद'

भारतेन्दु (१८५०—८५) के साथ हिंदी कविता के विषयों और उनके प्रकाशन की शैली में क्रांति हो गई। इतिहास की दृष्टि से वर्तमान काल कुछ पहले, लगभग प्लासी युद्ध (१७५७ से) आरंभ हो जाता है, परन्तु हिंदी कविता पर नवीन प्रभाव गदर (१८५७) के बाद से ही पड़ने आरम्भ हुए। इन्होंने ही कालांतर में उसका रूप बदल दिया। अतः भारतेन्दु को ही वर्तमान हिंदी कविता का 'आदि कवि' होने का श्रेय मिलता है।

प्राचीन हिंदी कविता के विषय धर्म और शृङ्गार थे, नवीन हिंदी काव्य मे धर्म को गौण स्थान मिला। प्राचीन कवि रस-पुष्टि पर अधिक बल देते, नवीन कवि भाव-प्रकाशन और भाव-पुष्टि को ध्यान मे रखते थे। देश की नवीन परिस्थितियो ने स्वतंत्रता की भावना, देश-प्रेम, समाज-सुधार की भावना को जन्म दिया। कविता के लिए नए विषय मिले। उसका रूप ही नया हो गया।

भारतेन्दु के समय से वर्तमान हिंदी काव्य की जो धारा वही है, उसमे प्राचीन काव्य-धारा की कई प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हैं—वैष्णव (राम-कृष्ण) भक्ति, निर्गुण (संतभावना), रीति शृङ्गार भाव। परन्तु साथ ही जिन नई प्रवृत्तियो का समावेश हुआ है उन्होंने इन भावनाओं को शिथिल कर रखा है। इनमे सबसे प्रधान राष्ट्रीयता, देश-प्रेम अथवा स्वतन्त्रता की भावना है। राष्ट्रीय वीरो का गुणगान, राष्ट्रपतन के लिए दुःख-प्रकाश, समाज को

अवनति के प्रति क्षोभ, कुरीतियों के परिहास के लिए अधीरता और तत्परता तथा हिंदू-हितैषियता (जातीयता) ये भारतेन्दु-काल के काव्य के प्रमुख विषय हैं—

कहाँ गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै थिर
कहाँ क्षत्र सब मरे जरे सब गए किते गिर
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर
कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो धूरहिं धूर दिखाय जग
जागो अब तो खल-बल दलन रक्षहु अपनो आर्य मग

( भारतेन्दु )

स्त्रीगण को शिक्षा देवें कर पतिव्रता यश लेवें
झूठी यह गुलाल की लाली धोवत ही मिटि जाय
बाल व्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुख लाय
विधवा विलपैं नित धेनु कटै कोउ लागत हाय गोहार नहीं

( प्रतापनारायण मिश्र )

यह समय भारतवर्ष के लिए अत्यंत संकट का समय था। देश ने हथियार डाल दिये थे। एक नई संस्कृति और सभ्यता से उसका संघर्ष चल रहा था। देश में अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त एक जन-समुदाय धीरे-धीरे खड़ा हो गया था। भारतीय धर्म, कर्म और संस्कृति सभ्यता की बात को भूल कर यह नया शिक्षित वर्ग 'साहब' बना जा रहा था। ऐसे समय में भारतीयता के लुप्त हो जाने का डर था। हमारे कवियों ने जहाँ समाज को उदार बनने के लिए ललकारा—

पित पति सुत करतल कमल लालिक ललना लोग
पढ़ें गुनैं सीखैं सुनैं नासैं सब जग सोग
वीर प्रसयिनी बुध बधू होइ दीनता खोय

नारी नर अरधंग की साँचहि स्वामिनि होय
(भारतेन्दु)

वहाँ हिंदुओं की मानसिक दासता पर क्षोभ भी प्रगट किया—

अंग्रेजी हम पढ़ी तऊ अगरेज न बनिहैं
पहिरि कोट-पतलून चुरुट के गर्व न हनिहैं
भारत ही में जन्म लियो भारत ही रहिहैं
भारत ही के धर्म-कर्म पर विद्या जहिहैं
(अंबिकादत्त व्यास)

सबै विदेसी वस्तु नर गति रति रीति लखात
भारतीयता कछु न अब भारत में दरसात
हिन्दुस्तानी नाम सुनि अब ये सकुचि लजात
भारतीय सब वस्तु ही सो ये हाय घिनात
(प्रेमघन)

यद्यपि कवि अंग्रेजी शासन को अच्छा समझते थे, परन्तु उन्होंने अपने समय की राजनैतिक जागृति को भी पहचाना और ब्रिटिश शासन की बड़ाई करते हुए भी दयनीय दशा के करुण चित्र रखे—

अंग्रेज़ राज सुख काज सजे सब भारी
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी
ताहू पै मँहगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुख हो देन हाहा री
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई
(भारतेन्दु)

कांग्रेस की स्थापना (१८८५) हो जाने से देश में आशा का संचार हुआ और कवियों ने नवजागरण का शंखनाद किया—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का
समझ अंत अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका
उन्नति पथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा दिखाई
खग बंदेमातरम् मधुर ध्वनि पड़ने लगी सुनाई
उठो आर्य संतान सँभल मिल बस न विलंब लगाओ

(प्रेमघन)

एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन कवियों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण था। आधुनिक काव्य में प्रकृति को जैसा स्थान मिला है, वैसा पहले कभी नहीं मिला था। पं० श्रीधर पाठक की 'ऊजड़ ग्राम', 'काश्मीर सुषमा' आदि कविताओं ने कवियों के लिये एक अभिनव क्षेत्र उपस्थित किया।

भारतेन्दु-काल (१८७०-१९००) से चलकर ये प्रवृत्तियाँ निरंतर विकसित, परिमार्जित एवं अन्य अनेक अन्तर्प्रवृत्तियों से प्रभावित होती हुई अब तक चली आ रही हैं। पहले १०-१५ वर्ष तक तो कोई नवीन परिवर्तन दिखाई ही नहीं देता। पं० रामचरित उपाध्याय, हरिऔध, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० रूपनारायण पांडेय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति कवियों ने भारतीयता, हिंदू जातीयता, राष्ट्रीयता जैसे विषयों पर उसी तरह लिखा है जिस तरह भारतेन्दु-काल के कवियों ने लिखा। अंतर यह है कि स्वावलंबन का भाव अधिक है, अंग्रेजी राज का गुणगान कुछ कम हो गया है, काव्य में कला का अधिक प्रवेश हो पाया है। परन्तु इतिवृत्तात्मकता बनी है। प्रकृति की ओर कवियों की अभिरुचि अधिक संलग्न दिखाई पड़ती है। यद्यपि अधिकांश कवि प्राकृतिक वस्तुओं की तालिका बाँध कर ही रह जाते हैं, परन्तु पं० रामचंद्र शुक्ल जैसे सहृदय कुछ कवि प्रकृति के अनेक रूपों में प्रभावित होकर उसमें रम जाते हैं और कवियों को प्रकृति के रूप-रंग देखने

का एक नया ढंग सुझाते हैं। राम और कृष्ण काव्य में मानवता का अधिक समावेश हो गया है।

बीसवीं शताब्दी के दशाब्द बीतने पर इन प्रवृत्तियों के साथ कुछ नितांत नवीन प्रवृत्तियाँ भी हमारे सामने आती हैं। ये हैं—करुणा की प्रधानता, नैराश्य और नैराश्यमूलक उत्साह, रहस्यवाद, शृङ्गारिकता को आवरण मे छिपा कर प्रगट करने की चेष्टा (प्रच्छन्न नारीप्रेम), असंयत कल्पना, मानवीय सहानुभूति का विस्तार। इन प्रवृत्तियो के मूल मे कई प्रकार की प्रेरणाएँ है। राजनैतिक परिस्थितियों, विशेषकर राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलता ने युवको को हताश कर दिया था। जीविका की समस्या प्रबल थी। महायुद्ध के बाद संसार के आर्थिक संतुलन में एक ऐसी उथल-पुथल हो गई जिसका प्रभाव सभी देशो पर पड़ा। हमारे देश मे जहाँ राष्ट्रीय और सामाजिक अनेक समस्याएँ उठ रही थीं, वहाँ अर्थ की विषम समस्या भी उठ खड़ी हुई। इसका प्रभाव काव्य पर भी पड़ा। पहले कुछ कवियो ने चारों तरफ की स्थिति से एकदम आँख मूँद ली और अपनी कल्पनानुभूति द्वारा बनाये हुए सौन्दर्य, प्रेम और करुणा के लोक मे जैसे खो गये। छाया, लहर, स्वप्न, आँसू, अनंग, नक्षत्र जैसे विषयों पर बहुत कुछ लिखा गया, परन्तु मनुष्य, उसके सुख-दु:ख, आशाकांक्षा की उपेक्षा की गई। कवि सौन्दर्य के रूपो मे खो गये थे। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ करुणा की अनुभूति भी हुई क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि वे उस सौन्दर्य का उपभोग नही कर सकते। उन्हे सामाजिक और आर्थिक बंधनों का सामना करना पड़ता था। परन्तु उन्होने इन क्षेत्रो मे अपना क्षोभ एवं विद्रोह प्रगट न कर आध्यात्मिकता का आवरण देकर हमारे सामने प्रगट किया। प्रसाद के आँसू, पंत का उच्छ्वास, रामकुमार और महादेवी के करुणा के गीतो के पीछे यही मन:स्थिति काम कर

रही है। नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण विचित्र था। आचार्य शुक्ल जी ने 'छायावाद' को "कायावृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" कहा है। कवि अपनी कविता में लता-विटप अथवा शैफाली और पवन का संयोग-विलास तो अत्यंत सूक्ष्मता से विस्तार-पूर्वक लिखता था। परन्तु स्त्री के प्रति मोह और आसक्ति होते हुए भी उदासीन था। उसे एकदम अतीन्द्रिय बना रहा था। आत्मा-परमात्मा के मिलन या आध्यात्मिक वियोग की भावना को ही अनेक कविताओं और गीतों में बद्ध किया गया, परन्तु उनके पीछे कवि की कल्पना है, परंपरा का पालन है, कवि की साधना और अनुभूति नहीं।

१९१३ ई० के लगभग 'प्रसाद' की 'काननकुसुम' और 'इंदु' (मासिक पत्र, काशी, १९०९-१६) की खड़ी बोली कविताओं से जो एक नई धारा चली उसे छायावाद के नाम से पुकारा गया। १९२५ तक 'पल्लव' और 'आँसू' के प्रकाशन के साथ यह धारा स्थायित्व प्राप्त कर चुकी थी। साधारण जनता में यह नाम सामयिक कविता के लिए १९३७ तक चलता रहा। 'प्रगतिवादी' काव्य का जन्म इसके बाद की कथा है। जिस किसी ने इस नाम का सूत्र-पात किया, उसका उद्देश्य सामयिक काव्य की हँसी उड़ाना था। उसे एक नई श्रेणी की कविता से परिचय प्राप्त हुआ जिसमें उसने बंगाल के श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर की "गीतांजली" और अंग्रेजी रोमांटिक कवियों विशेष वर्डस्वर्थ आदि के रहस्यवादी (Mystic) कही जाने वाली कविताओं की छाया देखी। बंगाल में जिस अर्थ में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग हो रहा था ठीक उसी अर्थ में, परन्तु निश्चय ही व्यंग में, क्योंकि हिंदी की कविता बंगाली की नकल समझी जाती थी, छायावाद का प्रयोग हुआ। धीरे-धीरे 'छायावाद' ने बंगाली भावुकता और रहस्यवादी आध्यात्मिक कविता के सिवा अनेक अंगों का विकास कर लिया। परन्तु नाम चलता रहा। अंत में व्यंग का भाव भी दूर हो गया, परन्तु इसके

लिए बहुत समय लगा। अभी हाल तक लंबे वाक्य, अस्पष्ट भावना, कठिन शब्दावली का प्रयोग, सतर्कतारहित उच्छृङ्खल व्यवहार, अव्यवहारिता—ये छायावादी कवि के लक्षण समझे जाते थे। उसे कल्पनाजीवी समझा जाता था।

सच तो यह है कि अब छायावाद की महत्ता कम होती जा रही है। छायावाद के कहे जाने वाले कवि नए-नए दलों में भरती हो रहे हैं। परन्तु छायावाद और उसके काव्य का ठीक-ठीक विश्लेषण अभी नहीं हो सका है। श्री रामचन्द्र शुक्ल इसे काया-वृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण कहते हैं या अभिव्यंजना की एक शैली मानते हैं जिसकी विशेषता उसकी लाक्षणिकता है। श्री नंददुलारे वाजपेई कहते हैं—"इसमें एक नूतन सांस्कृतिक भावना का उद्‌गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की आयोजना भी। पूर्ववर्त्ती काव्य से इसका स्पष्टतः प्रथम अस्तित्व और गहराई है।" 'प्रसाद' जी छायावाद को "अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्य अभीव्यंजना" मानते हैं जो "साहित्य मे रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष की अनुभूति, समरसता, तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहम्' का 'इदम्' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"

जैसा हम कह चुके हैं, 'छायावाद' शब्द का प्रयोग वर्तमान युग को, महायुद्ध और बाद की बहुमुखी हिंदी कविता के लिए हुआ है और उसमें अनेक प्रवृत्तियों के साथ आध्यात्मिक रहस्यवाद, सौन्दर्य-निष्ठा, लाक्षणिकता एवं मनुष्य जीवन एवं प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण को प्रमुख स्थान मिला है। अनेक प्रवृत्तियों में अस्पष्ट राष्ट्रीय भावनाएँ और सामाजिक उद्‌गार भी आ जाते हैं। परन्तु यह शब्द का व्यापक अर्थ है। संकीर्ण अर्थ मे लेने पर भी शब्द के ठीक-ठीक अर्थ करने की सुविधा नहीं

होती। हाँ, उसकी विशेषताओं की ओर ही इस प्रकार इंगित किया जा सकता है—

(१) छायावाद काव्य में आत्माभिव्यक्ति की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। इसीसे उसमे भाव की प्रगाढ़ता और पद की गेयता सहज ही प्रतिष्ठित हो जाती है। परात्मबोधक कविताएँ और खंड-काव्य में लिखे गये, परन्तु उनमे भी तीव्रानुभूति के स्वर ऊपर हो उठे हैं और कवि आत्मविमुख होकर नहीं बैठ सका है।

(२) परमात्मा-आत्मा के संबंध में छायावाद काव्य अद्वैतावस्था को मान कर चलता है। प्रेम, विरह और करुणा की भावना की प्रधानता इसी लिये है कि इनके द्वारा ही इस अवस्था पर पहुँचा जा सकता है। महादेवी, रामकुमार वर्मा और निराला की कितनी कविताएँ इसी प्रेममूलक अद्वैत पर खड़ी हैं।

(३) छायावाद के कवियों का आग्रह उत्तमोत्तम आदर्श सौंदर्य-सृष्टि की ओर है। वे सुन्दर शब्दों, सुन्दर भावों और सुन्दर रूपों में खो गये हैं जैसे संसार में असुन्दर का स्थान ही नहीं हो। इस प्रकार वे 'रोमांटिक' और 'पलायनवादी' कहे जाने लगे। उन्होंने जिस जीवन की कल्पनात्मक अनुभूति उत्पन्न की, वह हमारे साधारण प्रतिदिन के परिचित जीवन से एकदम भिन्न। पंत और रामकुमार अपने काव्य में इसी सौंदर्यानुवेषण के कारण सौंदर्य-निष्ठ कवि बन गये हैं। उन्होंने लौकिक शृङ्गार में भी इतनी अतीन्द्रियता भर दी है कि उन पर "अशरीर भावनाओं" की भक्ति का दोषारोपण किया जाता है। वास्तव में, सौंदर्य के प्रति उनका दृष्टिकोण आश्चर्य, भक्ति और अतीन्द्रिय आसक्ति का ही अधिक है। इस तरह उनकी कविता रीति-काल की शृङ्गारिक कविता के एकदम विरोध में जा पड़ती है जहाँ स्थूल शृङ्गार, अभिसार, चुंबन और परिरंभण के सिवा और कुछ है

ही नहीं। छायावाद की कविता ने इसी परंपरागत शृङ्गार भावना के प्रति विद्रोह किया है।

(४) छायावाद की कविता में लाक्षणिकता की प्रधानता है। इसे शैली की विशिष्टता कहना ही ठीक होगा, इसके रूप कई हैं। कहीं तो अन्योक्ति और वक्रोक्ति का आश्रय लिया गया है, कहीं अलंकारों के वक्र, लाक्षणिक और अंग्रेजी ढंग के प्रयोग मिलते हैं, कहीं प्रतीकों का प्रयोग है। इन सबने एक स्थान पर मिल कर नए पाठक के लिये कितने ही स्थानों पर जैसे कूट-काव्य की सृष्टि कर दी है। इनमे सबसे अधिक कठिनता प्रतीकों के संबंध मे है। 'प्रसाद' ने कहा—"आलंबन के प्रतीक उन्हीं के लिये अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति युग के अनुसार अपने लिये विभिन्न आधार चुनती है।" परंतु ये प्रतीक इतनी अस्पष्टता, शीघ्रता और अनिश्चतता के साथ पाठक के सामने आये कि वह उसे पकड़ ही नहीं सका।

(५) छायावाद काव्य मे "विश्व-सुदंरी प्रकृति मे चेतनता का आरोप प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद है।" इसके अतिरिक्त प्रकृति और मनुष्य मे रागात्मक संबंध इसी प्रकार के काव्य मे पहली बार सामने आता है।

(६) जीवन के प्रति दृष्टिकोण दुःख और निराशापूर्ण है। सारा छायावाद काव्य ही ('प्रसाद' और 'निराला' के कुछ काव्य को छोड़ कर) दुःख-प्रधान है। यह दुःख कहीं आध्यात्मिक है, कहीं लौकिक। अधिकांश मे इसका संबंध व्यक्तिगत असफलताओं से है जिन्होंने धीरे-धीरे दुःख का एक दर्शन ही दे दिया है जिसका आधार अद्वैत दर्शन पर ही रखा गया है। कितने ही कवियों ने दुःख की साधना को ही काव्य की श्रेष्ठतम कला मान लिया है।

(७) हम यह मान लेने के लिये तैयार हैं कि छायावाद

काव्य की ये विशेषताएँ सम्पूर्णः मौलिक नहीं है। इनमें से कुछ के लिये उसे कबीर, रवीन्द्र या शेली का मुँह जोहना पड़ा है, परंतु धीरे धीरे इस काव्य में अपना व्यक्तित्व विकसित कर लिया था जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि हिंदी काव्य मे कितने ही वर्षों से उसकी अपनी रूढ़ियाँ चल रही हैं। कवियों ने धीरे-धीरे कवि-कर्म में कुशलता प्राप्त कर ली है और उन्होंने जनता में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सारे हिंदी साहित्य में किसी भी युग के कवियों को जनता तक पहुँचने के लिये इतना कठिन प्रयत्न कभी नहीं करना पड़ा, न उन्हें इतना समय लगा। स्पष्ट है कि जनता इस लगभग सौ प्रतिशत परिवर्तन के लिये तैयार नहीं थी। हमारी काव्य-परंपरा इतनी पीछे छूट गई थी कि इस काव्य को समझने के लिये उससे सहारा नही लिया जा सकता था। नए मूल्यों का सृजन करना पड़ा। आलोचना के नए मापदंड बने। तब कहीं यह काव्य जनता तक पहुँच सका।

कोई भी काव्य अपने युग से बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। छायावाद काव्य पर अस्पष्टता, अमौलिकता, अव्यवहारिकता, अनैतिकता, ईमानदारी की कमी और अशरीरीपन ये कितने ही दोष लगाए जाते है, परन्तु यदि सच पूछा जाय तो यह अपने युग का श्रेष्ठ प्रतिबिंब है। मध्य देश का मध्य वर्ग जिस बौद्धिकता के ह्रास, भावुकता के प्राबल्य और मन-वाणी के सामाजिक और राजनैतिक नियन्त्रणों में से गुजर रहा था, उसी के दर्शन इस काव्य में भी मिलेगे। गाँधीवाद में दुःख, कष्ट-सहन और पराजय को राष्ट्रीय साधना के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। समाज में प्रेम कहना पाप था। मध्य वर्ग में साकार उपासना पर से विश्वास उठ रहा था, परन्तु वैष्णव भावना को बिल्कुल अस्वीकार करना असंभव था। आर्थिक और राजनैतिक संकटों ने कमर तोड़ दी थी। महायुद्ध के आरंभ के प्रभात के

स्वप्न युद्ध समाप्ति पर कुहरे के धरोहर बन गये। ऐसे समय काव्य का रूप ही और क्या होता? रवीन्द्र के काव्य ने इस प्रदेश की मनोवृत्ति के अनुकूल होना उसकी काव्य-चिता को यह विशिष्ट रूप दे दिया। 'चित्रांगदा' और 'काननकुसुम' की कितनी ही कविताओं और 'साधना' के गद्य गीतों पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है, परन्तु बाद के काव्य के विकास का अपना अलग इतिहास है।

आज समाज और राष्ट्र की परिस्थितियाँ बदल गई हैं। हृदय का स्थान बुद्धि ने ले लिया है। छायावाद का आध्यात्मिक आधार—अद्वैतवाद—ही ढह-सा रहा है, कम से कम नए कवियों का उसकी ओर विशेष आग्रह नहीं है। जो कवि दो दशाब्द पहले छंद, भाषा और अभिव्यंजना के नए प्रयोग करता हुआ लड़खड़ा रहा था, आज इनका कुशल अधिकारी है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया है या तेजी से बदल रहा है। ऐसे समय में जो कवि पहले कहता था—

अब न अगोचर रहो सुजान
निशानाथ के प्रियवर सहचर
अंधकार, स्वप्नों के मान
किसके पद की छाया हो तुम!
किसका करते हो अभिमान!
तुम अदृश्य हो, दृग अगम्य हो
किसे छिपाये हो, छविमान!
मेरे स्वागत भरे हृदय में
प्रियतम आओ, पाओ स्थान

वह अब कहता है—

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव सस्कृति

युग-युग से रच शत-शत नैतिक बंधन,
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु-तन
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नवयुग में गर्हित

अथवा—

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ' संस्कृत लगते मन को केवल कुत्सित
संस्कृत कला, सदाचारों से भव-मानवता पीड़ित
स्वर्ण पिंजरों में बंदी है मानव-आत्मा निश्चित
आज असुन्दर लगते सुन्दर प्रिय पीड़ित शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर हटाता मानव-मुख मन

स्पष्ट है कवि अध्यात्म की ऊँचाइयों से उतरकर दैनिक जीवन की तलैटियों में आ गया है। उसने सुन्दरता के लिए नए मूल्य ढूँढ़ने का प्रयत्न शुरू कर दिया है। छायावाद काव्य के मूल्य उसे आज अति भावुकता से ग्रसित जान पड़ते हैं। जो कवि पहले सौन्दर्य को इस रूप में देखता था—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणी, कैसे तूने पहचाना
वहाँ कहाँ हे बाल विहगिनि, पाया तूने यह गाना!
शशि-किरणों से उतर-उतर कर भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख सिखा रहे थे मुसकाना
तूने ही पहले, बहुदर्शिनि, गाया जाग्रति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का, नभचारिणि, गूँथ दिया ताना-बाना

वह अब उसे इस रूप में ग्रहण करता है—

सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,

बने नीम दल
लंबे, पतले, चंचल,
श्वसन स्पर्श से
रोमहर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल

या—

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिल बिल
एक दूसरे से मिल,
मित्रों से हैं खड़े,—
मौन, मनोद
दोनों पादप
सह वर्षातप
हुए साथ ही बड़े
दीर्घ, सुदृढ़तर !
पतझर मे सब पत्र गए झर
नग्न, धवल शाखों पर
पतली, टेढ़ी, टहनी अगणित
शिरा जाल सी फैली अविकल
भू पर कर छायांकित !
नील निरभ्र गगन पर
चित्रित दोनो तरुवर
आँखों को लगते हैं सुन्दर,
मन को सुख कर !

जिस जीवन से दूर भाग कर या जिससे ऊपर उठकर कवि अपनी ही कल्पना के संसार और अपनी ही संवेदना के

व्यापारों में खो जाता था। उसी जीवन ने आज उसके नक्षत्र-भवन पर धावा बोल दिया है। आज कवि जीवन की वास्तविकता के साथ फौजी कदम रखता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस अग्र-भूमि से देखने पर हम छायावाद के महत्त्व को अधिक अच्छी तरह ग्रहण कर सकेंगे।

---

# २

# प्रारंभिक रचनाएँ : 'इन्दु'

( १९०९—१९१६ )

'इंदु' आधुनिक कविता के इतिहास की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है। जयशंकर प्रसाद से इसका अत्यत निकट का सबन्ध रहा है। पत्र उन्हीं के आग्रह से निकाला गया। संपादक और प्रकाशक उनके भांजे अंबिकाप्रसाद गुप्त थे। पहली संख्या (कला १, किरण १) शुक्ल श्रावण संवत् १९६६ (१९०९) मे प्रकाशित हुई। मुखपृष्ठ पर मङ्गल-वाक्य था—

ॐ इन्दुशेखराय नमः

भीतर मोटो (आदेश-वाक्य) इस प्रकार छपता था—

सज्जन चित्त चकोरन को हुलसावन भावन पूरो अनिन्दु है
मोहन काव्य के प्रेमिन के हित सींच सुधारस को बलिबिंदु है
ज्ञान प्रकाश प्रसारि हिये बिच, ऐसो जो मूरखता तमभिन्दु है
काव्य-महोदधि ते प्रकस्यो, रसरीति कलायुत पूरण 'इन्दु' है

पहली संख्या में ही स्वच्छन्दतावाद ( Romanticism ) का बिगुल इन शब्दो मे सुनाई पड़ता है—

"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता है और उसके लिए कोई विधि का निबंधन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है, वह किसी के परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता, ससार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य

और सौंदर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकशित करता है, आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतंत्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" (इन्दु, कला १, किरण १, 'प्रस्तावना')।

इस अंक की मङ्गलाचरण की कविता 'प्रसाद' की ही है। यह कविता व्रजभाषा में इस प्रकार है—

> वन्दे मुकुलित नवल नील अरविंद नभनिवर
> वरदे नवशशि लाञ्छित अनुपम मुखे सुधाधर
> धरति कमलकर वीणा बाजत जगतानन्दे
> आनन्दामृत वरषति जय जय शारद वन्दे !
> नन्दन बाल वकुलतरस्थित जय रस की मूरति
> उघटत ताल रसाल वीणा बाजत रस पूरति
> शुभ्र कमल दल भाल विभूषित स्वेतवरणि जय !
> जयति देवि शारदे लसत आभूषण मणिमय !
>
> इत्यादि
>
> ('शारदाष्टक' कला १, किरण १)

इस कविता पर जहाँ भावना में भक्तिकाव्य का प्रभाव है, वहाँ शैली गीतगोविन्दम् (जयदेव) से उधार ली गई। इस तरह की रचनाएँ परम्परा-घोषित होने के कारण कोई महत्त्व नहीं रखतीं।

परन्तु इसी संख्या में हमारा ध्यान एक वस्तु की ओर आकर्षित होता है। वह है 'प्रसाद' का पहला गद्यलेख 'प्रकृति-सौंदर्य'। प्रसाद की पहली प्रकृति-विषयक कविता किरण ३ में प्रकाशित हुई, परन्तु प्रकृति-प्रेम उनकी स्थायी वृत्ति थी, यह इस लेख से सिद्ध हो जाता है। दूसरी किरण में 'प्रेमपथिक' प्रकाशित

हुआ। यह ब्रजभाषा छंद में है। बड़ा हो जाने पर यह स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ और फिर 'प्रसाद' ने इसे परिवर्तित और परिवर्द्धित कर खड़ी बोली में १६१३ ई० मे प्रकाशित कराया। तब इसने क्रांतिकारी रूप ग्रहण कर लिया था। १६०५ के लगभग मूल रूप मे ब्रजभाषा में लिखा जाकर यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। समसामयिक काव्य में इसने एक युगपरिवर्तन की सूचना दी। यह कथात्मक काव्य था, शायद गोल्डस्मिथ के Hermit से प्रभावित था, परन्तु विषय और उसकी निबंधता treatment दोनों मौलिक होने के कारण जनता का ध्यान उसकी ओर गया।

'प्रसाद' के प्रारंभिक काव्य की प्रगति प्रकृति की ओर थी, यह कला १, किरण ३ में प्रकाशित उनकी शारदीय शोभा कविता से प्रगट होता है। एक अन्य प्रवृत्ति थी मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक वृत्तियों की विवेचना की ओर। किरण ३ की 'मानस' शीर्षक कविता मे 'कामायिनी' का बीज निहित था, यह कौन अस्वीकार करेगा ? इसी वर्ष (१६०६) हम प्रसाद को 'प्रेमराज्य' और 'उर्वशी' (चंपू) लिखते पाते हैं। प्रेम और छंदों की नवीनता की ओर ,प्रसाद' पहले से ही उन्मुक्त थे।

नए काव्य मे कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। १६०६ के लगभग ही प्रसाद ने कल्पना देवी की अभ्यर्थना इस प्रकार कर ली थी—

(१) हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन-प्रान
तुम विशद व्योम समान
तव अति नरनहिं जान
(२) प्रत्यक्ष भावी भूत
यह रँगे त्रिविध प्रसूत

तव तानि प्रकृति सुतार
पट विनत सुचि संसार

(३) येहि विश्व को विश्राम
अरु कछुक जो है काम
सब को अहौं तुम ठाम
तव मधुर ध्यान ललाम

(४) तव मधुर मूर्ति अतीत
हे करत हीतल च्चीत
व्याकुल नरन को भीत
तुम करहुँ अबहुँ अभीत

(५) शैशव मनोहर चित्र
तुम रचहु कबहुँ विचित्र
मनु धूल धूसर बाल
पितु गोद खेलत हाल

(६) तव सुखद भावी मूर्ति
जेहि कहत आशा स्फूर्ति
मनुजहिं रखै बिलमाय
जासों रहै सुख पाय

(७) नवजात शिशु को ध्यान
हुलसावही पितु-प्रान
वह कमल कोमल गात
जनु खेलिहै कहि तात

(८) कहुँ प्रेममय संसार
नव प्रेमिका का प्यार
कंपित सुदामा चित्र
बहु रचहु तुम जगमित्र

(६) तब शक्ति कहि अनमोल
कवि करत अद्भुत खेल
कहि दृग-स्वविन्दु तुषार
गुहि देत मुक्ताहार इत्यादि

(१०) तुम दान करि आनंद
हिय को करहुँ सानद
नहिं यह विषम संसार
तहँ कहाँ शांति बयार

(कला १, किरण ५)

अंग्रेजी स्वच्छन्दवादी कवि 'कीट्स' ने भी इसी तरह प्रारंभ में 'tres to fancy' कविता लिखी थी। कल्पना का रोमांस से गहरा साथ है। इसी से हम देखते हैं कि प्रसाद का ध्यान शीघ्र ही शकुन्तला की ओर गया और उन्होंने व्रजभाषा मे 'बनवासिनी बाला' नाम से उसकी कथा लिखी (क० १, कि० ६)। इन कविताओ के अतिरिक्त अयोद्ध्योधार ( कि० १० ), समाधिसुधा (कि० १२) और सन्ध्यातारा ( क० २, कि० १ ) इसी वर्ष प्रकाशित हुई। प्रसाद की पहली कहानी 'ब्रह्मर्षि' कला १, किरण ७ मे प्रकाशित हुई। सन्ध्यातारा कविता में प्रसाद ने पयार छद ( बंगला ) का प्रयोग किया। भारतेन्दु भी एक खड़ी बोली कविता के लिए इसका प्रयोग कर चुके थे। यह दूसरा प्रयोग था।

'कवि और कवित्त' कला २, किरण १ मे 'प्रसाद' ने सामयिक काव्य-स्थिति के संबध में लिखा है— "अधिकांश महाशय × × × कविता-मर्म समझने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यो, छन्द विषयक अरुचि है? इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल

कविता नहीं मिलती और पुरानी कविता को पढ़ना तो मानों महाद्वेष-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस ढङ्ग की कविता बहुतायत से हो गई है। × × ×

"शृङ्गार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय सगीतमयी वृत्ति स्फुरण-कारिणी, आलस्य को भग करने वाली, आनंद बरसाने वाली धीर-गम्भीर पद-विक्षेप-कारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिये। अब दूर नही है; सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग कर रही है, और प्रबल रूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को भी लजावैगी, एक बार वीणा-धारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेगी, भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।"

इसके बाद शीघ्र ही प्रसाद का स्वर बदला। वर्षा मे नदीकूल (क० २, कि० १) के बाद उनकी पहली खड़ी बाली कविता 'चित्र' (किरण २) प्रकाशित हुई और फिर वे बराबर खड़ी बोली में लिखते गये। १९०९-१९१६ तक का 'इन्दु' का सारा जीवन-काल प्रसाद का कविता-विषयक परीक्षा-काल है। उनकी पहली सुन्दर खड़ी बोली कविता जिसमे वे खंडकाव्य के पूरे उल्लेख के साथ हमारे सामने आते हैं 'सत्यव्रत' है जिसमें चित्रकूट मे राम-लक्ष्मण-सीता का चित्रण किया गया है। इसी संख्या (कला ४, खंड १, किरण १) मे 'भरत' शीर्षक कविता भी प्रकाशित हुई है। उस समय रामकाव्य की ओर जनता का ध्यान जा रहा था। नवीनजी की 'उर्मिला' और गुप्तजी की 'साकेत' की नींव भी इसी समय के लगभग रक्खी गई थी।

'प्रसाद' के प्रयोगी रूप को आज हम 'कामायिनी' (१९३६) की

चकाचौंध मे भूल गये है, परन्तु यदि हम 'इंदु' के पुराने परचे उठा कर देखें ता हमे उनकी महान् साधना का ज्ञान होता है। प्रसाद ने गजल-छद तक को अपनाया। इन्दु क० ४०, ख० १, कि० ५ में उनकी एक गजल 'भूल' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी—

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं
उन्हें अवकाश ही रहता कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं
जो ऊँचे चढ के चलते हैं वो नीचे देखते हरदम
प्रफुल्लित वृक्ष ही यह भूमि कुसुमागार करते हैं
न इतना फूलिये तरुवर, सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरन्द के मधुकर नहीं गुंजार करते हैं
'प्रसाद' उसको न भूलो तुम तुम्हारा जो कि प्रेमी है
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं

१९१३ के लगभग प्रसाद के काव्य पर गीतांजलि (प्र०१९११) का प्रभाव पड़ने लगता है। इस प्रभाव का प्रथम लक्ष्य 'नमस्कार' शीर्षक कविताओं में होता है—

जिस मदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मदिर में रङ्क नरेश समान रहा है
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा
जिस मदिर के दीप, इन्दु दिनकर औ' तारा
उस मदिर के नाथ को
निरुपम निरमम स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

(जुलाई, १९१३)

तप्त हृदय को जिस उशीरगृह का मलयानिल
शीतल करता शीघ्र दान कर शांति को अखिल
जिसका हृदय पुजारी है रखता न लोभ को
स्वयं प्रकाशानुभव मूर्ति देती न क्षोभ जो
प्रकृति सुप्रांगण में सदा
मधुक्रीड़ा कूटस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को
(अगस्त, १९१३)

'प्रसाद' बार-बार नये छंदों के प्रयोग भी कर रहे हैं। 'पतित पावन' शीर्षक कविता में देखिए—

पतित हो जन्म से या कर्म ही से क्यों नहीं होवे
पिता सब का वही है एक, उसकी गोद में रोवे
पतित पदपद्म से होवे
तो पावन हो ही जाता है
(जनवरी, १९१४)

उन्होंने 'सॉनेट' भी लिखी—

सिन्धु कभी क्या बाड़वाग्नि को यों सह लेता
कभी शीत लहरों मे शीतल ही कर देता
रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पड़ता
तो क्या जल होकर ज्वाला से यों फिर लड़ता
कौन जानता है, नीचे में क्या बहता है
बालू में भी स्नेह कहो कैसे रहता है
फल्गू की है धार हृदय वामा का जैसे
सूखा ऊपर, भीतर स्नेह सरोवर जैसे
ढकी वर्फ की शीतल ऊँची चोटी जिनकी
भीतर है क्या बात न जानी जाती उनकी

ज्वालामुखी समान कभी जब खुल जाते हैं
भस्म किया उनको जिनको वे पा जाते हैं
स्वच्छ स्नेह अंतर्हित फल्गू सदृश किसी समय
कभी सिन्धु ज्वालामुखी धन्य धन्य रमणी-हृदय
(क० ५, ख० १, कि० १)

बंगला 'त्रिपदी' छंद का भी प्रयोग किया गया है—

सघन सुन्दर मेघ मनहर
गगन सोहत हेरि
धरा पुलकित अति अनन्दित
रूप धर्यो चहुँ फेरि
लता पल्लवित राजै कुसुमित
मधुकर सों गुञ्जित
सुखमय शोभा लहि मन लोभा
कामन नवरञ्जित
बिज्जुलि मालिनि नव कादम्बिनि
सुन्दर रूप सुधारि
अमल धारा नव जल धारा
सुधा देत मनु ढारि

परन्तु इन कविताओं का महत्त्व प्रयोगात्मक और ऐतिहासिक मात्र है। परन्तु फिर भी व्रजभाषा की कुछ कविताएँ बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं और हमें सहसा आकर्षित कर लेती हैं—

पवन चलत सुरभति अति जो
मदमत्त करत सब ही को
मनहुँ मनोहर कामिनि कर
परसत किम शीतल जी को

झुकी सुमन के भार ते
डारन ये परसत नीको
ललित विमलता अति लोनो
तरुन तरुन के ही को
(पावस, कला २, किरण २)

विशेषतः जब इस प्रकार की कविताएँ द्विवेदीयुग की संस्कृतगर्भित नीरस कविताओं के समकक्ष रखी जाती हैं—

सुसान्ध्य रागोत्थित ताम्र सीमा
मनो धरे अंबुज अञ्जुली या
निशा नवेली शशि को मनावै
विथा हिये की सिगरी सुनावै
कपूर-सों वासित वायु सीरो
मरन्द के गन्ध सन्यो उसी से
वियोगियों के मन को विमोहै
सँयोगियों को सब भाँति छोहै
(गिरि-वर्षा—चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह, कला २०, किरण २)

इस कविता के सम्मुख प्रसाद के 'इन्द्रधनुप' की प्रतिभा रखिये तो चमत्कार का पता लगेगा—

नदनकानन विहरणशील अप्सरागन को
सूखत पट बहुरंग हरत है जे मुनि मन को
किधौं गगन तरकस तानि बहुरंग तार को
फेरत तिन पर संग सुघर अनसिमित वार को
( कला ३, कि० २ )

या खड़ी बोली की उनकी पहली कविता 'चित्र'—

आशातटनी का कूल नहीं मिलता है
स्वच्छंद पवन बिन कुसुम नहीं खिलता है

कमलाकर में अति चतुर भूल जाता है
फूले फूलों पर फिरता टकराता है
मन को अथाह, गम्भीर समुद्र बनावो
चचल तरङ्ग को चित से बेग हटावो
शैवाल तरङ्गों मे ऊपर बहता है
मुक्ता-समूह थिर जल भीतर रहता है
(कला २, कि० २)

यद्यपि प्रसाद ने ब्रजभाषा की कविता खड़ी बोली के साथ-साथ बराबर लिखी, इस प्रारंभिक काल मे द्विवेदी-युग के कवियो का उन पर प्रभाव नही पड़ता, यह भी असंभव था। 'प्रभातिक कुसुम' और 'शरत्पूर्णिमा' (कला २०, कि० ४) जैसे नवीन विषयो पर उन्होने ब्रजभाषा मे रचनाएँ कीं, परन्तु सामयिक काव्य का प्रभाव पड़ने के कारण वे कुछ समय तक द्विवेदी-युग से ऊपर नही उठ सके—

चंद्रिका दिखला रही है क्या अनुपम सी छटा
खिल रही है कुसुम की कलियाँ सुगंधों की अटा
सब दिगतों मे जहाँ तक दृष्टि पथ की दौड़ है
सुधा का सुन्दर सरोवर दीखता बेजोड़ है
(जलविहारिणी, कला २, किरण ५)

परन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने लिए नया क्षेत्र निकाल लिया। यह क्षेत्र था अतुकात कविता का। १६२३ ई० के लगभग प्रसाद क्रान्तिकारी रूप मे हमारे सामने आते है। इसी से 'सत्यव्रत' (कला ४, कि० १) मे हमें उनके खड़ा बोली के प्रौढ़ काव्य के दर्शन होते है। इसी हेतु उन्होने अतुकांत के प्रयोग शुरू किये—

हिमगिरि का उत्तुङ्ग शृंग के सामने
खड़ा बताता है भारत के गर्व को

पड़ती इस पर जब माला रवि-रश्मि की
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में
बनती हैं हिमलता कुसुममणि के खिले
पारिजात का ही पराग शुचि धूलि है
सांसारिक सब ताप नहीं इस भूमि में
सूर्यताप भी सदा सुखद होता यहाँ
हिमसर में भी खिले विमल अरविंद हैं
कहीं नहीं है शोच, कहाँ संकोच है
चंद्रप्रभा में भी गलकर बनते नहीं
चंद्रकांत से ये हिमखंड मनोज्ञ हैं

(भरत, कला ४, खं० १, कि० १, १६१३)

१६१३ में ही प्रसाद को मानसिक संकट उठाना पड़े। एक कविता में उन्होंने इसका संकेत किया है—

ये मानसिक विप्लव प्रभो जो रहे दिन रात हैं

( करुण क्रन्दन, अप्रैल १६१३ )

और अगली ही संख्या में हम उन्हें वेदनात्मक काव्य की ओर झुका पाते हैं जैसे 'दलित कुमुदिनी'। कुछ वर्षों तक उनका यह दु:खभाव चलता रहता है। जुलाई-अगस्त १६१३ में 'नमस्कार' शीर्षक कविताओं के प्रकाशन से हम उन्हे गीतांजलि (प्र० १६११) के प्रभाव-क्षेत्र मे भी आया पाते है। इसी समय कदाचित् उनकी वे कविताएँ प्रकाशित होती है जो राय कृष्णदास के संस्करण के आधार पर गद्यगीत के रूप में रविठाकुर के प्रभाव से लिखी गई जैसे—

जब प्रलय का हो समय ज्वालामुखी निज मुख खोल दे
सागर उमड़ता आ रहा हो, शक्ति साहस बोल दे
ग्रहगण सभी हों केंद्रच्युत लड़कर परस्पर भग्न हों
उस समय भी हम हे प्रभो! तव पद्मपद में लग्न हों

जब शैल के सब शृङ्ग विद्युतवृन्द के आघात से
हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात से
जब घिर रहे हों प्रलय घन अवकाशगत आकाश में
तब भी प्रभो! यह मन खिँचे तव प्रेमधारा-पाश में

(फरवरी, १९१४)

इसी समय उनकी एक दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना 'महाराणा का महत्त्व' (कला ५, खं० १) प्रकाशित हुई। कविता अतुकांत थी। इसमे प्रसाद प्रौढ़ हो गए है—

तारा हीरक हार पहनकर, चहुँमुख
दिखलाती चढ़ती जाती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार पर)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेम से
चढ़े अटारी पर मिलने को नाथ से
अकबर के साम्राज्य भवन के द्वार से
निकल रही थी लपट सुगध सनी हुई
'बसरा के मुश्क' से वासित हो रहा
भारत को सुख शीत पवन, जैसे कहीं
मिले विकास नवीन विवेकी हृदय से
राजभवन में मणिमय दीपाधार सब
स्वयं प्रकाशित होते थे, आलोक भी
फैल रहा था स्वच्छ सुविस्तृत भवन में
कृत्रिम मणिमय लता-भित्ति पर जो बनी
नव वसंत सा उन्हें विमल आलोक ही
मुक्ताफल शालिनी बनाता था अहो,
कुसुमकली की मालाएँ थी झूमतीं
तोरन बन्दनवार हरे द्रुमपत्र के

सुरभि पवन से कलियाँ सब खिलने लगीं
कृश मालाएं 'गजरे' सी वह हो गई

(क० ५०, कि० ६)

परन्तु 'गीतांजलि' का प्रभाव अधिक गहराई और बाद की कविताओं में दूर तक चलता है—

नये नये कौतुक दिखला कर
जितना दूर किया चाहो
उतना ही दौड़ दौड़ कर
चंचल हृदय निकट होता

(जनवरी, १९१५)

देर तुम्हारे आने मे थी, इसलिये
कलियों की माला विरचित की थी कि हाँ
जब तुम आओगे, ये खिल जाँयगी
सुखद शीत मारुत ने हमे सुला दिया
ये सब खिलने लगीं, न हमको ज्ञात था
मधुर स्वप्न तेरा हम तो ये देखते
किंतु कली थी एक हृदय के पास ही
माला में वह गड़ने लगी न खिल सकी
आँख खुली तो देखा चन्द्रालोक से
रजित कोमल बादल नभ में छा गए
जिस पर बैठे पवन सहारे तुम चले
हम व्याकुल हो उठे कि तुमको अंक में
ले लूँ, तुमने झोरी सुरभित सुमन की
फेकी, मस्त हुई आँखें फिर नींद में

(सुख की नींद : सितम्बर १९१६)

जो हो, इन प्रभावों और प्रयोगो के द्वारा प्रसाद के हिन्दी काव्य मे एक युगांतकारी परिवर्तन कर दिया। यह सच है कि

उनके साथ अन्य शक्तियाँ भी आईं। पंत और निराला ने भी नए काव्य की भेरि बजाई। परन्तु 'प्रसाद' प्राचीन काव्य के गढ़ में रहते हुए इस जागरण के अग्रदूत हुए, यह उनके लिए श्रेय की बात थी। शताब्दी के प्रारंभ में खड़ी बोली बहिष्कृत थी। काव्य क्षेत्र मे उसका कोई स्थान नहीं था—

जात खड़ी बोली पै कोऊ भयो दिवानो
कोउ तुकात बिन गद्य लिखन में है अरुझानो
अनुप्रास प्रतिबन्ध कठिन जिनके उर माहीं
तथापि पद्य-प्रतिबधहु लिखत गद्य क्यों नाहीं
अनुप्रास कबहूँ न सुकवि करि शक्ति घटावै
सच पूछौ तो नव सूदन हिये उपजावै

(सरस्वती, १६०१, पृ० ६)

जहाँ परिस्थिति यह थी, वहाँ एक दशक के बाद ही हमे खड़ी बोली मे ऐसे प्रामाणिक काव्य मिले जैसे प्रियप्रवास, रग मे भंग, जयद्रथवध, पद्यस्कंध, भारत-भारती, मौर्यविजय, चारण, हिन्दी मे मेघदूत, प्रवासी, नीति कविता, मेवाड़गाथा, माधव-मंजरी। 'प्रसाद' इस दिशा में और आगे बढ़े। तुकान्तहीन काव्य के क्षेत्र मे उन्होंने विशेष योग दिया। प्रेमपथिक (१६१३) उनका पहला प्रयास था। उनसे पहले रामचरित उपाध्याय, ब्रजनन्दन-सहाय, कृष्णराम, रूपनारायण पांडे थे और मैथिलीशरण गुप्त तुकान्तहीन काव्य की रचना कर चुके थे, परन्तु प्रसाद के 'प्रेम पथिक' (१६१३), 'करुणालय' (इन्दु, माघ संवत् १६६६) और महाराणा का महत्त्व इनसे कहीं आगे थे। यह हर्ष का विषय है कि तुकांत काव्य का महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रारंभिक काल मे पसंद कर उसे अपना बल दिया था। (द्विवेदीजी का पत्र लोचनप्रसाद पांडेय के नाम, ता० १४-६-१६०७ : इन्दु : क० ६०, खं० २०, किरण १, १६१५)

यद्यपि बाद में 'सुकवि किंकर' के नाम से उन्होंने छायावाद के विरोध मे अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी (सरस्वती, मई १६२७ और भारतेन्दु सं १, अं०, १६२८)

१६२७ ई० में लगभग १० वर्ष अंतर्द्धान रहने के बाद जब 'इन्दु' फिर प्रकाशित हुआ, तो प्रसाद द्वारा संस्थापित नई काव्य-बेलि लहलहा उठी थी। १६०६-१६ तक यह नया काव्य 'इन्दु' के पृष्ठों में ही जन्म एवं विकास को प्राप्त हुआ था, अतः हमे प्रसन्नता होती है जब संपादक लिखता है :

"गद्य के साथ आधुनिक हिन्दी कविता ने भी करवट ली हैं। अभी उसका लड़कपन दूर नहीं हुआ है, पर नींद की इस नई करवट ने उसे मधुर अवश्य बना दिया है। पहले वह सेवा की चीज़ थी, अब प्रेम की वस्तु हो गई है। पुराने अभिभावकों को शिकायत है कि अस्पष्टता और उच्छृङ्खलता बढ़ रही है पर वह भूल जाते हैं कि ये दोनो बाते जीवन के वसंत और यौवन के संधिकाल के दो बहुत ही आवश्यक उपकरण हैं। हिन्दी के नये मधुकर, बड़े-बूढ़ों की इस शिकायत का शायद यह जवाब दें कि प्रौढ़ता मुबारिक हो उनको जिनकी यात्रा का वही संबल है। अल्हड़पन ही तो जीवन का विकास है। हम भी यह कहे तो अनुचित न होगा कि सौन्दर्य सदैव एक रहस्य है, अतएव जहाँ जितनी ही सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता भी रहेगी। सौन्दर्य की भाषा मे जो अस्पष्टता, संकोच और (सिर झुकाकर कभी-कभी ऊपर देख लेने वाली) लज्जा की सहेली है वही साहित्य के प्रगति-विज्ञान मे प्रतियोगिता के चिन्ह है। परिवर्तन की इस अवस्था पर रोने वाले रोयें, पर वह रोने की नहीं, मुस्कुराने की चीज है। हॅसने की चाहे भले ही न हो।

हमारा तो विश्वास है कि साहित्य के दृष्टिकोण में सबसे यह महत्त्वपूर्ण जो परिवर्तन हुआ है वह कविता से ही संबंध

रखता है। 'इन्दु' को गर्व है कि अपने जीवन के आरंभिक दिनों में जो बीज उसने बोये थे, वे आज रूप बदल कर लहलहा रहे हैं।"

(कला ८, कि० १, जनवरी १६७७)

इन पंक्तियो मे प्रसाद की आत्मा ही नही प्रसाद के ही शब्द ध्वनित हैं! कौन जानता है, 'इंदु' के लिए प्रसाद ने कितना परिश्रम किया, कितनी संपादकीय टिप्पणियाँ उन्होंने लिखी? परन्तु जो जानते है, उन्हें ऊपर की पक्तियाँ गर्वोक्ति नही लगेगी, यह साधक द्वारा उसकी साधना की स्वीकारोक्ति मात्र है। 'इंदु' के माध्यम से प्रसाद ने दो दशको मे हिंदी काव्य को रीतिकालीन बुझौवल और द्विवेदीयुगीन जड़ता-चक्र से निकाल कर प्रेम, सौन्दर्य और चिंतन की प्रशस्त भूमि पर ला खड़ा किया।

———

# ३

## "काननकुसुम"

'प्रसाद' की प्रारंभिक रचनाएँ इस छोटे से संग्रह में संग्रहीत हैं। अधिकांश कविताएँ वही है जो 'इंदु' (१९०९-१९१६ ई०) मे प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रसाद की प्रौढ़तम रचनाओं को ऐतिहासिक प्रगति के अध्ययन के लिए ये कविताएँ उपादेय हैं।

इन प्रारंभिक कविताओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१—व्रजभाषा कविताएँ,

२—द्विवेदी-युग के अनुरूप खड़ी बोली की कविताएँ,

३—नई प्रवृत्ति लिए छायावादी काव्य की भूमिका में रक्खी जाने योग्य खड़ी बोली की कविताएँ।

पहले हम व्रजभाषा काव्य को लेंगे।

'प्रसाद' ने कविता लिखना आरम्भ किया तो अपने युग के अन्य कवियों की भाँति उनकी दृष्टि व्रजभाषा की ओर गई। उस समय विशेषकर भारतेन्दु का काव्य उनका पथप्रदर्शन कर रहा था। स्वयं 'भारतेन्दु प्रकाश' कविता में उन्होंने भारतेन्दु को अपनी प्रारम्भिक सुन्दर अनुभूतियाँ अर्पण की है—

सज्जन चकोर भये प्रफुल्लित मानि मन में मोद को
सहृदय हृदय शुचि कुमुद विकसे विसद बन्धु विनोद को
छिटकी सुहिंछी चंद्रिका आनन्द अतिहिं विधायिनी
यह भारतेन्दु भयो उदय धरि कांति जो सुख दामिनी

और कुछ कविताओ मे भारतेन्दु की ब्रजभाषा कविताओं की शैली का मार्मिक अनुकरण किया गया है—

सोयो सोयो जागिके, करि आगम पहिचान
काहि पुकारयो वेग सों, अहो पपीहा प्रान
हौं नहिं जानौ कहाँते आय परे तुम मीत
अबहीं जो तुम जात हौ करत महा अनरीत
प्रकृति सुमन बरसत रही, भली रही अधरात
का मिलिवे के समय मे, तेहि जनि करहुँ प्रभात
नव बसंत सों अतिथि तुम, आवहु हिय हरषाय
छोड़ि जात ग्रीषम तपन जासों जिय जरि जाय
आवत बरसत नेहरस, अहो प्रेमघन मीत
करि लकीर दुरि जाहुगे, धरि चपला की रीत

(विदाई)

परन्तु अधिकांश ब्रजभाषा कविताओ मे उन्होने नवीन विषय और नवीन भाव भरने की चेष्टा की है जैसे

धरि हिय माँहि असीम अनन्द
सने शुचि सौरभ सों मकरन्द
समीरन मे सुखमा भरि देत
प्रभातिक फूलहियो हरि लेत
मनो रमनी निज पीय प्रवास
फिरो लखि के निज बैठि निवास
निरखत अश्रु भरे निज नैन
अहो इमि राजत फूल सचैन

(प्रभातिक कुसुम)

और

लखहु नील सित असित पीत आरक्तिम शोभा
मिलि एकहि सङ्ग अद्भुत प्राची में मन लोभा

छितिज छोर लों कोर छवि धनुषाकृति सोहै
सन्ध्या को आलिंगित वह सब को मन मोहै
काञ्चनीय निज करन डारि भूमण्डल ऊपर
पश्चिम दिशि को जात लखहु यह भानु मनोहर
इत प्राची में धनुष लखायो रंग अनुपम री
भेंटि देत जनु भानुहिं रतनन गगन-जौहरी
(इन्द्रधनुष)

इन कविताओं में द्विवेदी युग की जड़ता के प्रति विरोध-स्वरूप कल्पना का स्वच्छन्द विलास स्पष्ट है जैसे

गहन विपिन सम गगन तासु वरवीर केशरी भारी
केशर कर बिखराइ चन्द घूमत है वनि वनचारी
तम आखेट करत ही डोलत सों कहिके भय भाजै
मनु श्रमबुद्ध करन ते उपज्यों सो तारागन राजै
देव गोपजन मह्यो महीसम छीर सिन्धु चितलाई
नव नवनीत अंश उड़ि लाग्यो कै अंबर छवि छाई
प्रकृति देवि निज लीला कन्दुक किधौ किये कलकेली
दियो उछाल गगन मह राजत सो करिके रँगरेली
नील गगन वर कुञ्जर को यह सोहै घंटा भारी
ध्वनि ताकी नलिनी विकास लहि मधुकर को गुंजारी
उज्ज्वल नवघन नील गगन मँह
चन्द अमन्द प्रकाशी
राजै जिमि नँदनंद गले में
कौस्तुभ शुचि सुखामही इत्यादि
(चन्द्रोदय)

ब्रजभापा काव्य में यह नई दिशा थी, जो आज भी अभिनंदनीय है, परन्तु युग की जड़ता के कारण ग्रहण नहीं हो

सकी। एक अन्य कविता 'सन्ध्यातारा' में भी यही कल्पनाजन्य विलास उपस्थित है—

कामिनी चिकुर भार अति घन नील
तामे मणिसम तारा सोहत सलील
अनत तरग तुङ्ग माला विराजित
फेनिल गम्भीर सिन्धु निनाद वोहित
हरि कूहू में नाविक जिमि भयभीत
पीय - पथ दर्शकहिं लखत संप्रीत
ससार तरंग लखि भीत तिमि जन
निराशहृदय धारि सन्तापित मन
शाति निशा महिषी को राजचिन्ह रूप
तुमहि लखत संध्यातारा शुभ रूप

( संध्यातारा )

परन्तु छन्द 'पयार' (बॅंगला छन्द) का ब्रजभाषान्तर्गत अनुकरण है। स्पष्ट है, 'प्रसाद' का असंतोष तीन प्रकार का है।

१—विषयजन्य
२—शैलीजन्य
३—छंदजन्य

उन्होने काव्य को ब्रजभाषा में लिखते हुए भी तीनो दिशाओ में नए प्रयत्न किये हैं। विपय नवीन, शैली कल्पनाप्रसूत आलंकारिक और छंद 'पयार'।

परन्तु जब वे द्विवेदी युग के कवियो के अनुकरण मे लिखने लगे तो कल्पना का यह विलास उनकी सीमा मे रहते हुए आना असंभव था। परन्तु समसामयिक काव्य को आँख की ओट कर लेना असंभव था। प्रसाद ने प्रचलित छंदो में लिखा—

विमल इन्दु की विशाल किरणे प्रकाश तेरा बता रही हैं

अनादि तेरी अनंत माया जगत् को लीला दिखा रही हैं
('प्रभो' उर्दू छंद)

जब मानते है व्यापी जल भूमि में अनिल मे
तारा शशांक में भी आकाश में अतल में
फिर क्यों ये हठ है प्यारे मंदिर में वह नहीं है
यह शब्द जो नहीं है उनके लिए नहीं है
('मंदिर')

'रवि बाबू की एक कविता का विरोध द्रष्टव्य है। गीतांजलि की एक कविता इस प्रकार है :—

Leave this chanting and singing and telling of heads ! Whom dost thou worship in this lonely corner of a temple with doors all shut ? Open thine eyes and see thy God is not before thee !

He is there where the tiller is toilling the hard ground and where the path-maker is breaking stones. He is with them in sun and in shower. (Gitanjali, 11.)

परन्तु यहाँ भी कहीं-कहीं प्रसाद स्वतंत्रता से काम लेते हैं जैसे—

अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन प्रशांत सरसी में खिल रहा है
प्रथम पत्र का प्रसार करके सरोज आलिंगन में मिल रहा है
गगन में संध्या की लालिमा से किया संकुचित वदन था जिसने
दिया न मकरन्द प्रेमियों को गले उन्हीं के वो मिल रहा है
('सरोज', नया छंद)

बैठी वसन मलीना पहिन इक बाला
नलिनी पत्रों के बीच कमल की माला

× × ×

पर हाय चन्द को घन ने क्यों है घेरा,
उज्ज्वल प्रकाश के पास अजीब अँधेरा
उस रस-सरवर में क्यों चिंता की लहरी
चंचल चलती है भावभरी है गहरी
कल कमल कोश पर हाय ! पड़ा क्यों पाला
कैसी हाला ने किया उसे मतवाला
किस धीवर ने यह जाल निराला डाला
सीपी से निकली है मोती की माला

( 'मलीना' : दुखवाद, कलपना विलास )

कवि के इस प्रथम काव्य में भी हमें कल्पना का विशेष उद्रेक दिखाई देता है जो आगे आकर छायावादी काव्य की एक बड़ी ऊहात्मक रूढ़ि बन गया।

छायावाद की एक दूसरी पद्धति है वेदना का स्वतः अनुभव एवं प्रकाशन। इन प्रारंभिक कविताओं में इस ओर भी स्फुरण मिलता है। जैसे—

(१) करुणानिधे, यह करुण क्रन्दन भी ज़रा सुन लीजिये

( करुण क्रन्दन, आध्यात्मिक वेदना)

(२) क्लात हुआ सब अङ्ग शिथिल क्यों वेप है
मुख पर श्रमसीकर का भी उन्मेष है
भारी बोझा लाद लिया न सँभार है
छल छालों से पैर छिले न उबार है
चले जा रहे वेग भरे किस ओर को
मृगमरीचिका तुम्हें दिखाती छोर को
किंतु नहीं हे पथिक ! वहाँ जल है नहीं
बालू के मैदान सिवा कुछ है नहीं

(करुणापुञ्ज, आध्यात्मिक वेदना)

(३) त्रस्त पथिक देखो करुणा विश्वेश की

( करुणावाद )

छायावाद कविता का एक विषय प्रेम की रहस्यमय व्यंजना है और इस क्षेत्र में 'प्रसाद' सबसे पहले आते हैं। एक कविता 'नीरव प्रेम' है। कविता ब्रजभाषा मे है। कवि कहता है, प्रेम अपने सुन्दरतम रूप में मौन ही है। एक अन्य कविता 'विस्मृत प्रेम' में कवि कहता है, जब हृदयाकांश मे अंधकार हो जाता है, तब प्रेम-प्रकाश दिखलाता है—

घन तमावृत शून्य आकाश सों
हिम भयो यह हाय निरास सों
तबहुँ रश्मि लखाय विभाभरी
ध्रुव समान सुकौन प्रभाधरी

प्रेमी को प्रेम की पीड़ा भी प्रिय है, यह छायावादी काव्य का प्रिय विषय है। कवि कहता है—

मैं तो तुमको भूल गया हूँ
पाकर प्रेममयी पीड़ा

( हृदय वेदना )

'निशीथमयी' 'दलित कुसुम' 'एकांत मे' आदि कविताएँ इस प्रेम की वीथिका में दुःखवाद को लेकर आगे आती हैं।

वस्तुतः इन कविताओं मे हम प्रसाद के कवि-जीवन का 'प्रथम प्रभात' पाते हैं। 'प्रथम प्रभात' शीषक उनकी कविता उनके व्यक्तित्व के प्रथम प्रकाशन के रूप में सामने आती है—

मनोवृत्तियाँ खगकुल-सी थीं सो रहीं
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में
नील गगन-सा शांत हृदय भी हो रहा
वाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रहीं

स्पदनहीन नवीन मुकुल मन तुष्ट था
अपने ही प्रच्छन्न विमल मकरन्द से
कहा अचानक किस मलयामिल ने तभी
(फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ)
आती ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें
खुली आँख, आनन्द दृश्य दिखला गया
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूंज के
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा
वर्षा होने लगी कुसुम मकरन्द की
प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में
कैसी छवि ने बाल अरुण की प्रकट हो
शून्य हृदय को नवल राग रंजित किया
सद्यःस्नात हुआ फिर सुतीर्थ मे—
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया
विश्व, विमल आनद भवन-सा हो गया
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था

इस प्रथम प्रभात मे हम कवि को अनेक नई दिशाओ में बढ़ते पाते है :

१—कल्पना का उद्रेक
२—नवीन छंद
३—नवीन विषय
४—प्रेम की रहस्यमयता
५—पीड़ा का महत्त्वगान
६—आध्यात्मिक प्रेम की तितीक्षा
७—कथाकाव्य के प्रति प्रेम
८—नाटकीयता : काव्य मे
९—प्रकृति-प्रेम

अभी तक कवि का काव्य मुख्यतः प्राग्मादिक है। उसमे कोई छलछंद नही। कवि लक्षरण-व्यंजना के दाँव-पेंच मे नहीं पड़ता। इस दृष्टि से नवीन होते हुए भी यह काव्य प्रसाद की एक महत्त्व पूर्ण भंगिमा से वंचित हैं। जो हो, यही काव्य है जिसने छाया-वाद ( नए काव्य का स्वच्छन्दतावाद ) की नीव डाली, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

# ४

## "झरना"

'झरना' का पहला संस्करण १६२८ मे प्रकाशित हुआ। दूसरा १६२६ में। इस संग्रह मे 'प्रसाद' की १६१४-१६१७ के बीच की खड़ी बोली की कविताएँ है। 'प्रथम प्रभात' इसमे भी है। वास्तव मे कवि ने प्रभात का बिगुल सुन लिया है और सब अपने महत्त्व को समझ गया है, अतः 'काननकुसुम' की इसी कविता से संग्रह का आरम्भ हुआ है। संग्रह की सारी कविताएँ खड़ी बोली है, यह महत्त्वपूर्ण है। इससे यहाँ पर प्रसाद का द्वैधरूप समाप्त हो जाता है। इस काव्य-संग्रह में भी हम कवि की अनेक प्रवृत्तियो को आगे बढ़ता देखते है।

'झरना' प्रकृति का प्रतीक है, परन्तु इस संग्रह मे प्रकृति संबन्धी कविताएँ एक दो ही हैं। कवि प्रेम, विरह, दुख, सुख की व्याख्या मे लगा है। प्रकृति संबन्धी एक सुन्दर कविता है 'पावस प्रभात'।

> क्लात तारकागण की मद्यपमण्डली
> नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती
> रिक्त चषक-सा चद्र लुढ़क कर है गिरा
> रजनी के आपानक का अब अंत है
> रजनी के रज्जक उपकरण बिखर गये
> घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर
> अरुण अपागो से देखा, कुछ हँस पड़ी
> लगी टहलने प्राची प्रागण में तभी

इस कविता में कवि ने 'मद्यपमंडली' का रूपक बाँध कर प्रभात में चंद्रतारा की अस्तव्यस्तता का वर्णन किया है, पर यहाँ उर्दू-फारसी काव्य का प्रभाव खुल पड़ा है। दूसरे पद में कवि ने उषा प्रसंग का सुन्दर युवती के रूप में मूर्त्तिमान किया है जो रजनी के निखरे उपकरण देख कर प्रसन्नता और ईर्ष्या से गर्वीले हैं। यह मूर्त्तिमत्ता (personification) नए काव्य का प्राणहै।

अधिकांश कविताओं का संबन्ध अध्यात्म से है। बहुत-सी कविताएँ 'इन्दु' की ये ही कविताएँ हैं जिन पर रवि बाबू का प्रभाव लक्षित है। भावदत्त पर यह प्रभाव १६१३ के लगभग पड़ता है। वैसे छन्द 'सॉनेट' है या हिंदी का ही कोई चलता छंद।

प्रार्थना और तपस्या क्यों ?
पुजारी किसकी है यह भक्ति ?
डरा है तू निज पापों से,
इसी से करता निज अपमान !
दुखी पर करुणा क्षण भर हो,
प्रार्थना पहरों के बदले,
हमें विश्वास है कि वह सत्य
करेगा आकर तव सम्मान

( आदेश )

रवि बाबू की कविता इस प्रकार है—

"Deliverance? Where is this deliverance to be found? Our master himself has joyfully taken upon him the bonds of creation; he is bound with us all for ever. Come out of thy meditations and leave aside thy flowers & incense! What harm is there if

thy clothes become tattered & stained? Meet him and stand by him in toil and in sweet of thy brow.

(*Gitanjali, 11*)

एक दूसरी कविता मे कवि कहता है—

हँसी आती है मुझको तभी
जब कि यह कहता कोई कहीं
अरे सच, यह तो हैं कगाल
अमुक धन उसके पास नहीं

× × ×

शात रत्नाकर का नाविक
गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष
कर रहा वह देखो मृदुहास
और तुम कहते हो कुछ नही

(कुछ नही)

इसे रवि बाबू की इस कविता की वीथिका मे पढ़िये—

On many an idle day have I grieved over lost him. But it is never lost, My Lord. Thou hast taken every moment of my life in thine own hands, Hidden in the heart of things thou art nourishing seeds into spruots, buds into blossoms, and ripening flowers into fruitfulness.

(*Gitanjali, 81*)

कुछ कविताओं में कवि एक भीषण अशांति का अनुभव करता है। पद कहता है—

जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार
तभी कामना के नूपुर की
हो जाती झंकार

चमत्कृत होता हूँ मन में

(अव्यवस्थित)

एक दूसरी कविता 'रत्न' मे वह रवि ठाकुर की तरह कहता है कि 'रत्न' की रक्षा मे पड़कर उसने उसका उपभोग भी नहीं किया। यों ही दिखलाने मे रहा। रवि बाबू भी कहते हैं—

The child who is decked with Prince's robes and who has jewelled chains around his neck loses all pleasure in his play, his dress hampers him at every step.

In fear that it may be frayed, or stained with dust he keeps himself from the world, and is afraid even to more. (*Gitanjali* 8)

पिछले संग्रह में हमने प्रसाद को प्रेमी के रूप में भी देखा था। इस संग्रह से पता चलता है कि प्रेमी उपेक्षित रहा और उसने प्रेमी की तीव्र मर्माहत वेदना का अनुभव किया। प्रेम पात्र ने उसे ठुकरा दिया। सुधा में गरल मिला दिया—

सुधा में मिलादिया क्यों गरल
पिलाया तुमने कैसा तरल
माँगा होकर दीन
कंठ सीचने के लिए
गर्म झील का मीन
निर्दय तुमने कर दिया
सुना था तुम हो सुन्दर ! सरल

(सुधा में गरल)

उसने अनुभव किया कि प्रेम नाहर है—

हृदय गुफा थी शून्य
रहा घोर सूना

इसे बसाऊँ शीघ्र
बढ़ा मन दूना
अतिथि आ गया एक
नहीं पहचाना
हुए नहीं पद-शब्द
न मैने जाना
हुआ बड़ा आनन्द
बसा घर मेरा
मन को मिला विनोद
कर लिया घेरा
उसको कहते "प्रेम"
अरे, अब जाना
लगे कठिन नखरेख
तभी पहचाना
अतिथि रहा वह किंतु
न घर बाहर था
लगा खेलने खेल
अरे, नाहर था

इस प्रकार प्रसाद उपेक्षित प्रेम, विरह और करुणा से अपने काव्य-जीवन को आरंभ करते हैं। एक कविता मे कवि कहता है—

रे मन !
न कर तू कभी दूर का प्रेम
निष्ठुर ही रहना अच्छा है, यहाँ करेगा क्षेम
( विन्दु )

वह अपनी प्रेम की सच्चाई की बात पुका-रपुकार कर कहता है—

तपा चुके हो विरह-वह्नि में
काम जँचाने काम हमे,
शुद्ध सुवर्ण हृदय है प्रियतम !
तुमको शंका केवल है

( कसौटी )

कहीं संयोग स्मृति के गीत गाता है—

नियत था—पर हम दोनों थे
वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दान्त
कहा जब व्याकुल हो उनसे
"मिलेगा कब ऐसा एकान्त ?"
हाथ में हाथ लिया मैंने
हुए वे सहसा शिथिल नितान्त
मलय ताड़ित किसलय कोमल
हिल उठी उँगली, देखा, भ्रान्त

( झील में )

'होली की रात' मे उपेक्षा के ये तार प्रकृति की भूमिका में बजते है—

चादनी धुली हुई है आज
बिछलते हैं तितली के पंख
सम्हल कर मिलकर बजते साज
मधुर उठती है तान असंख
तरल हीरक लहराता शात
सरल आशा-सा पूरित ताल
सिताबी छोड़ रहा विधु कात
बिछा है सेज कमलिनी जाल

× × ×

उड़ा दो मत गुलाल-सी हाय
अरे अभिलाषाओं की धूल
और ही रंग नहीं लग जाय
मधुर मंजरियाँ जावें भूल—
विश्व में ऐसा शीतल खेल
हृदय में जलन रहे क्या बात !
स्नेह से जलती होली खेल
बना ली हाँ, होली की रात

( होली की रात )

परन्तु इसी संग्रह से प्रसाद की शैली में परिवर्तन होता है। वह लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने की प्रवंचना में पड़ जाते है। अतः दो पक्षों में घटाने के प्रयत्न के कारण कविताएँ अस्पष्ट हो जाती है। यही से 'रहस्यवाद' का आरंभ होता है। प्रसाद ने अपने विषयों में रहस्यवाद को भंगिमा की एक शैली माना है, इन कविताओं के अध्ययन से उनका दृष्टि-कोण स्पष्ट हो जाता है। वे मूलतः 'रहस्य' 'आत्मा-परमात्मा' के कवि नहीं थे। परन्तु जब इस रूप मे उनकी प्रसिद्धि हो गई तो वह चुप-चाप इसे निभाते गये। प्रसाद मूलतः प्रेम, विलास और सौन्दर्य के कवि है। उन्होंने आनन्द के आधार पर मानव जीवन के सुखो-दुखो की व्याख्या की है। वे कलाकार कवि है। परन्तु वे उस अर्थ में रहस्यवादी कवि नहीं जिस अर्थ मे हम कबीर, मीरा या महादेवी को रहस्यवादी कहेंगे। इस संग्रह में हम देखते हैं कि कवि धीरे-धीरे इस पार्थिव प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम मे बदल देता है—

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये
यह अलस जीवन सफल सब हो गया

कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिंधु है
इस हमारे और प्रिय के मिलन से
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा;
कोकिलों का स्वर विपञ्ची नाद भी
चन्द्रिका, मलयज पवन, मकरंद औ
मधुप माधविका कुसुम से कुंज में
मिल रहे, सब साज मिल कर बज रहे
आज इस हृदयब्दि में, बस क्या कहूँ
तुङ्ग तरल तरंग कैसी उठ रही

( मिलन )

प्रकृति और आध्यात्मिक कविताओं के अतिरिक्त प्रसाद गीतों की ओर भी बढ़ते है। इस संग्रह में कुछ सुन्दर गीत हैं। कुछ गीत प्रचीन पद के ढंग के है। जैसे

अया को करिये सुंदर राका
फैले नव प्रकाश जीवनघन ! तव मुखचद्र पिया का
मेरे अतर में छिपकर भी प्रकटे मुख सुखमा का
प्रबल प्रभजन मलय मारुत हो, फहरे प्रेम पताका

या—

आया देखो विमल वसत

( बिंदु )

कभी असम मात्रिक छन्दों का कटा-छटा शृङ्गार करते है—

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश (१६)
बनाकर के मन मोहन केश (१६)
दीनता को अपनाया (१२)
उसीसे स्नेह बढ़ाया (१२)

लता अलता बढ़ चली साथ (१६)
मिला था करुणा का शुभ हाथ (१६)

कभी "चौपाई" ( १६ मात्रा ) के आधार पर निश्चित ढंग चलता है—

तू आता है, फिर जाता है
जीवन में पुलकित प्रणय सदृश
यौवन की पहली कांति अकुश
जैसी हो, वह तू पाता है
हे वसंत तू क्यों आता है

कभी-कभी विषम-मात्रिक छन्दो के प्रयोग से परिस्थिति सुन्दर भी हो जाती है। जैसे—

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी
मनोहर झरना
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर०

इस प्रकार हम 'प्रसाद' को आधुनिक गीतिकाव्य के उन्नायक के रूप मे भी देखते है। यह सच है कि इस दिशा मे उन्होने पंत या निराला जैसा वृहद् साहित्य हमे नही दिया, परन्तु इसमे कोई संदेह नहीं कि वे आधुनिक गीतिकाव्य के पिता है।

अत मे 'झरना' सग्रह मे हम 'प्रसाद' को प्रधानतम प्रेम और सौदर्य के कवि के रूप मे पाते है। इस प्रेम-काव्य पर उर्दू का प्रभाव लक्षित है, 'आँसू' (१९२५) मे कवि के कलाकार हाथो ने उसे छिपा दिया है—

किसी पर मरना यही तो दुख है

'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है
(उपेक्षा करना)

सुखद थी पीड़ा, हृदय की क्रीड़ा
प्राण में मेरी भयानक शक्ति
मनोहर सुख था, न मुझको दुख था
रही विप्रयोग में न विरक्ति
(वेदने, ठहरो)

ऐसी न जाने कितनी पंक्तियाँ इस प्रभाव को ही लक्षित करती हैं।

---

# ५

# "आँसू"

(१९२५, १९३८)

'आँसू' प्रसाद का सबसे प्रसिद्ध काव्य है और कदाचित् छायावाद काव्य को एक विशेष रूप एवं व्यक्तित्व देने का जितना श्रेय इसे है उतना किसी अन्य काव्य को नहीं। प्रथमावृत्ति केवल पुस्तकाकार मे, १९२५ ई० में प्रकाशित हुई। दूसरे तीसरे संस्करण मे प्रसाद ने अनेक परिवर्तन भी कर दिये। उन परिवर्तनो का अपना इतिहास है और उनसे प्रसाद की कला और रुचि के विकास पर विशेष प्रकाश पड़ सकता है।

'आँसू' वास्तव मे एक छोटा-सा सुन्दर प्रेम-विरह-काव्य है, यद्यपि अध्यात्मपक्ष की ओर उसके अर्थ खेंच लिए गए हैं और इसी रूप में उसकी विशेष प्रसिद्धि है।

कोई कहानी नही। केवल कहानी का आभास मिलता है। इसलिए अर्थ अस्पष्ट ही रह जाते है। जहाँ काव्य की बीथिका और लेखक की मनोभूमि के संबंध में भी अटकल लगानी पड़ती है, वहाँ यही दशा होती है। कवि ने किसी से प्रेम किया है। यह प्रेम-व्यापार अनेक परिस्थितियों में अनेक दिनो तक चलता रहता है। परन्तु सहसा यह समाप्त हो जाता है। कदाचित् किसी कारण से प्रेमपात्र ने प्रेमी को अपनाना छोड़ दिया। जहाँ मिलन सुख की तरंगे थीं, वहाँ विरह की तप्त झंझा चलने लगी। 'आँसू' काव्य इसी विरह-कथा का आधुनिक रूप है।

कविता का ढाँचा यों है—

(१) कवि अपनी दुःखपूर्ण परिवर्तित अवस्था पर आश्चर्य करता है। ऐसा कैसे हो गया (छंद १-५)

(२) अपनी परिस्थिति का विश्लेषण करता है (६-१२)
(३) तब और अब तुलना (१३-३६)
(४) मिलन-स्मृति (३७-५७)

नखशिख (४८-५७)
उस मिलन के बाद (५८-६८)
उस मिलन की याद (६९-७५)

(५) अब ? वियोगदशा (७६-८६)
(६) उपालंभ (८७-९०)
(७) जीवन-मृत्यु (दर्शन) (९१-१२६)

वास्तव में, कथावस्तु की वीथिका न होने और अनेक नूतन प्रयोगों के कारण काव्य अस्पष्ट हो जाता है, परन्तु नई परंपरा के पीछे कुछ पुराना भी है। नखशिख प्राचीन प्रेम-काव्य का एक अंग है। 'प्रसाद' द्वारा उपस्थित नया नखशिख देखिए—

बाँधा है विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख (मुख, अलकें)
क्यों भरा हुआ हीरों से

काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली, (आँखें)
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली

गिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला पानी वेला सी
है अंजनरेखा काली

अंकित कर क्षितिज पटी को
तूलिका बरौनी तेरी (पलकें)
कितने घायल हृदयों की
बन जाती चतुर चितेरी

कोमल कपोल पाली मे (स्मिति)
सीधी-सादी स्मित रेखा
जानेगा वही कुटिलता
जिसने भौं में बल देखा (भ्रू भंगिमा)

विद्रुम सीपी संपुट में
मोती के दाने कैसे
है हंस, न शुक, यह, फिर क्यों (नासिका)
चुगने की मुद्रा ऐसे

विकसित सरसिज बन वैभव
मधुऊषा के अंचल मे
उपहास करावे अपना (हँसी)
जो हँसी देख ले पल मे

मुख कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के
जलविन्दु सदृश ठहरे कब (कर्ण)
इन कानों में दुन-किनके

थी किस अनंग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी (बाहु)
अलबेली बाहुलता या
तन-छवि-सर की नवलहरी

चञ्चला स्नान कर आवे
चंद्रिका पर्व मे जैसी, (तनद्युति)
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी

स्पष्ट है कि रीतिकाल के ही प्रचलित उपमानों का प्रयोग है। इसमें रीतिकाल की ही आत्मा बोलती है, अंतर है 'टेकनीक' का, शैली का, कला की कलम का। जहाँ अस्पष्टता या नयापन है, वह नये प्रयोगों के कारण। कवि प्राचीन चलती हुई उपमाओं को नए ढंग से रखता है। यदि कविता अस्पष्ट हो जाती है तो उसके कारण है :

(१) मिश्रित उपमानों का प्रयोग।

एक ही उपमेय के लिए कई उपमानो के एक साथ सब ही पद में उलझ जाने से अस्पष्टता आ जाती है जैसे पलको के वर्णन में कवि बाण और तूलिका को उपमान बनाता है और एक ही साँस में दोनों को मिला देता है। "तेरी पलको ने कितने हृदय घायल कर दिये। अब यही बरौनी तूलिका बन गई है और उसने उन घायल हृदयों के चित्र क्षितिजपटी पर खेच दिये है।" यहाँ कवि प्रसिद्ध उपमानो को ही लेता है।

अर्थ है, तेरी पलको को देखते ही उनसे घायल हृदयो का चित्र सामने खिंच जाता है। यहाँ 'क्षितिज' शब्द ने भाव को और उलझा दिया है। इस संदर्भ मे उसका कोई अर्थ नहीं। अर्थ

यही हो सकता है, कि तेरे घायल एक-दो नहीं, लाखों हैं, इसीसे चित्रपटी बड़ी है। परन्तु इससे भाव सुन्दर नही हो जाता।

(२) नए शब्दों के प्रयोग जैसे

पाली=तालाब का बाँध या उठा हुआ किनारा=

उभरे कपोल=स्वस्थ कपोल (२८)

'पुरइन 'किनके' जैसे अनेक जन-भाषा के शब्द संस्कृत शब्दों से लगा कर आगे बढ़ते हैं, जो काव्य को कुछ असंयत और अटपटा बना देते हैं।

(३) कहीं-कही नवीनता के लिये पुराने उपमानो को वाग्वैदग्धता के सहारे उपस्थित किया गया है। जैसे ५३वें छंद में

होंठ=विद्रुम-सीपी-संपुट

मोती के दाने=दाँत

चुगने की मुद्रा=दतपंक्ति

नासिका=शुक

(कवि कहता है, यह नासिका तो शुक है, फिर इसे चुगने के लिए मोती क्यो रखे गए है। यह तो हंस नही है।)

(४) उर्दू काव्य का प्रभाव।

जो यह नहीं जानते कि 'आँसू' पर प्रेम और वियोग दोनों पक्षो में वही उर्दू का प्रभाव है जिसके लिए बिहारी लांछित हैं, वह उसे भली भाँति समझ ही नही पाते। 'प्रसाद' की प्रेमिका उर्दू कवि की माशूका की भाँति निष्ठुर है, कठोर है; घायल करना, फिर मुँह फेर लेना, यह उसका क्रोध है, पैर से मल-मल कर हृदय के छाले फोड़ देगी। वह निष्ठुरा भला प्रेमी का दुःख क्यों सुनने लगी? उसके कान तो कमल के पत्ते है, उनमें दुखःकथा के अश्रुकण ठहरेंगे ही नही (५५)।

उर्दू काव्य के प्रभाव ने काव्य को रहस्यात्मक रूप देने में बड़ा भाग लिया है। कवि पुलिंग में प्रेमिका को संबोधित करता है जैसे

पर एक बार आए थे
निःसीम हृदय में मेरे (६३)

रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं विरह कहानी
वे सुमन नोचते सुनते
करते जाते मनमानी (६१)
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये

परन्तु इस विदेशी पद्धति के प्रभाव से गड़बड़ी भी हो सकती है, जैसे

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाए

जिसे दूसरे संस्करण में 'प्रसाद' को 'अंतर में' करना पड़ा। अंचल नारी-शृङ्गार है, पुरुष नहीं, इससे ठीक नहीं बैठता। यह प्रभाव अंत तक बना है जैसे लहर की एक कविता है 'निधरक तूने ठुकराया'। यह फारसी काव्य का उल्था-मात्र है। कवि कहता है— "तूने निधड़क होकर पैरों से मेरी जीवन प्याली ठुकरा दी। उसे अब भी तेरा प्रहार प्रिय है। वह फिर चाहती है, तुम बार-बार ठुकराओ। जीवन में जो रस बचा था, वह आँसू बन गया। प्रकृति ने उसे अपनाया। पृथ्वी पर मेघ बन कर मेरे आँसू बरसे और पृथ्वी को हरियाली का दान मिला (भाव, मेरे दुःख से संसार का कल्याण हुआ। स्वच्छंद काव्य मे कवि 'शहादत' के लिये

बराबर तैयार रहता है) अब क्यों यह करुणा ? क्या निष्ठुर हृदय में हूक उठी ? क्या पहली भूल जान पड़ी ? क्या कसक बोल उठी ? क्या सूखी डाली पल्लवित मुखरित हो गई ? ओ प्राणों के प्यारे ! ओ मतवाले ! ओ अंधड की तरह आने वाले ! और भूल और भूल जा ! मेरा क्या सोच ? मै तो मिट जाने वाला ही हूँ एक दिन।"

यह प्रभाव भाव-भंगिमा तक ही सीमित नही, भाषा भी इससे लांछित है। अधिकांश नए प्रयोगों के पीछे यही रहस्य है। 'शीतल ज्वाला' उर्दू का 'आतिशे नम' है। 'छिल-छिल कर छाले फोड़े', 'मल-मल कर मृदुल चरण से', हिन्दी-काव्य-संपदा से बाहर की चीज़ है। 'ज़ुलफो' के उलझने-सुलझने की बात हम सुनते है। 'प्रसाद' भी कहते हैं—

मेरे जीवन की उलझन
बिखरी थी तेरी अलके (८३)

भाग्य-चक्र को देखिये—

नचती है नियति नटी-सी
कन्दुक क्रीड़ा-सी करती (१२२)

'आसमान' कैसे ज़ुल्म ढाता है—

आकाश छीनता सुख को (८६)

इस प्रकार फारसी या उर्दू काव्य के व्यापक प्रभाव के कारण 'आँसू' के सस्कार हिन्दीवालो के सस्कार नही बन सके और लोग उसे रहस्यमयी कविता समझने लगे।

(५) नये प्रयोग हिन्दी के नये शब्दो और मुहावरो के गुम्फन के रूप में—

जैसे पुरइन, किनके, पाली, आँसू से गीली, आँख बचा कर

(मुख मोड़ कर) पलकों का लगना (नींद का आ जाना), लूटी (लुटी हुई), तने हुए (निर्मम बने हुए ), इत्यादि ।

(६) अंग्रेजी का प्रभाव

अंग्रेजी का प्रभाव भी कम नहीं है जैसे कोरी आँख निरखना Vacant eyes है; सुनहली संध्या को Golden seve समझिये । छूछा बादल Empty cloud का अनुवाद-मात्र है ।

(७) प्रतीकों का प्रयोग—प्रसाद ने लिखा है, युग की प्रतिभा युग के अनुसार अपने प्रतीक आप चुनती है । उन्होंने पहली बार नए प्रतीक चुनने का प्रयत्न यहां किया है। इसीलिये उनका काव्य सहज ग्राह्य नहीं हो पाता । कहीं-कहीं तो एकदम शत-प्रतिशत प्रतीकों की भाषा में ही बात कही गई है। जैसे कवि कहता है—

मेरे जीवन की उलझन
बिखरी थीं तेरी अलकें
पीली मधुमदिरा तुमने
थीं बंद हमारी पलकें

लहरों मे प्यास भरी थी
थे भँवरमात्र भी खाली
मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली (६३, ६४)

यहाँ प्रेमिका प्रेमी के मन की सारी मदिरा (मादकता) पी लेती है । जब पात्र खाली हो जाता है, तो उसकी (जीवन) प्याली व्यर्थ बना कर लुढ़का देती है । अब प्रेमी के सामने एक महान सौन्दर्य प्रेम का समुद्र कल्लोलें करता है, परन्तु उसका रस उसके लिये नहीं है । उसे तो भँवर-भँवर ही दिखलाई पड़ते हैं । ये भँवर खाली पात्र

की तरह लगते हैं। ये तो उसके जीवन के सूनेपन के ही प्रतीक हैं। इस प्रकार एक नई कृत्रिम प्रतीक भाषाका बराबर प्रयोग 'आँसू' को साधारण ज्ञान के धरातल से ऊँचा उठा देता है। संत-काव्य के बाद सबसे अधिक प्रतीक छायावाद प्रयोग मे लाया, परन्तु फिर भी 'प्रसाद' में पुरानापन अधिक है। वही उपमाएँ, वही उत्प्रेक्षाएँ, वही अभिसार, मिलन, विरह। 'इन्दु' (१६१४) में प्रकाशित एक कविता 'खोलो द्वार' मे अभिसारिका कहती है—

शिशिर कणों से लदी हुई कमली के भीगे हैं सब तार
चलता है पश्चिम का मारुत लेकर भी बरफों का भार
भीग रहा है रजनी का भी सुन्दर कोमल कबरी भार
गरम किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार
धूल लगी है काँटे जैसी पग-पग पर था दुःख अपार
किसी तरह से भूला भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार
डरो न प्रियतम धूल धूसरित होना नहीं तुम्हारा द्वार
धो डाले हैं इनको प्रियवर इन आँखो के आँसू-धार

यह रीति काव्य के 'अभिसार' को आध्यात्मिक गलियो मे ले जाना हुआ। निर्गुण संतों ने भी इसी तरह अभिसार, प्रेम और विरह के आध्यात्मिक गीत गाये थे। छायावादी काव्य में प्रसाद, निराला और पंत के काव्य में यह परंपरा फिर विकसित हो गई। इस नई प्रवृत्ति ने द्विवेदीयुग के प्रसादात्मक सीधे-साधे काव्य के समकक्ष वाजिदअली शाह के रंग-महल की वह भूलभुलैयाँ खड़ी कर दी कि पाठक और समालोचक दोनो अवाक् रह गये। फल यह हुआ कि या तो इस प्रकार के नए काव्य की खिल्ली उड़ाई गई, या उसमे जीव ईश्वर-माया-प्रकृति के ऐसे ताने-बाने बुने गये कि यह काव्य इस धरातल से उठकर अमानवो के रहस्यमय क्रीड़ा-विनोद की वस्तु हो गया।

(२) वास्तव में प्रसाद ने 'आँसू' में एक ऐसी शैली विकसित कर ली है, जिसकी व्याख्या उन्होने अपने प्रौढ़ निबंधों में की है। इस शैली में बात को वक्रता का बड़ा महत्त्व है। इसीसे 'प्रसाद' का काव्य साधारण मेधा को अग्राह्य हो जाता है। प्रसाद का कहना है—"अब प्रेमी को विश्राम कहाँ। उसका विश्राम हो गया ? है केवल उच्छ्वास और आँसू। अब यही उसके विश्राम है। आँख से अविरल अश्रुधारा बहती है, निद्रा भी सपना हो गई है," परन्तु वह बात को घुमा कर कहते हैं—

उच्छ्वास और आँसू मे
　　विश्राम थका सोता है
रोई आँखों में निद्रा
　　बनकर सपना होता है

इसी अटपटी भाव भंगिमा से काव्य रहस्यगीत हो जाता है। अनेक अस्पष्ट और उच्छृङ्खल शब्दों के प्रयोग से भाषा और भी जटिल हो जाती है जैसे—

विभ्रम मदिरा से उठकर
　　आओ तममय अतर में
पाओगे कुछ न टटोले
　　अपने विन सूने घर में　　(१०८)

यहाँ 'विभ्रम मदिरा' का अर्थ है—तुम सौन्दर्य हो, तुम्हें सौन्दर्य की मदिरा ने विमूर्च्छित कर दिया है। तुम क्या जानो, दूसरे के सुख-दुःख। 'अपने विन' का अर्थ है सिवा अपने इस हृदय में किसी को नहीं पाओगे। यहाँ तो तुम्ही हो। इस तरह बाद के छंद में—तुम तने हुए आओगे का अर्थ है कि तुम फिर भी रूठे होगे। कहीं-कहीं यह वाग्भंगिमा सांकेतिक ही छोड़ दी जाती है जैसे—

निष्ठुर जाते हो जाओ
मेरा भी कोई होगा ;
प्रत्याशा विरह निशा की
हम होंगे औ' दुख होगा (१२०)

कहना यही है कि मुझे तुम्हारी अपेक्षा नहीं। मेरा भी एक साथी है, वह है विरह-दुख। क्या तुम समझते हो, मेरा कोई साथी नहीं। यह पीड़ा में आनन्द पाने वाले प्रेमी की गर्वोक्ति है, यहाँ बात शीघ्र न खुल काव्यानंद में बाधक होती है।

(९) इस काव्य में 'प्रसाद' ने कल्पना के उच्चतम हिमालय शिखर तक पहुँचने का प्रयास किया है। कल्पनातिरेक से काव्य बोझिल हो उठा है। वह कहते है—

चमकूँगा धूल कणो में
सौरभ मे उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो
ग्रहपथ मे टकराऊँगा (११०)

'ग्रहपथ' में टकराने की बात साधारण कल्पना के परे है। इसी कल्पनातिरेक के कारण कहीं-कहीं अमूर्तभावों और मानसिक परिस्थितियो को उपमान बना लिया जाता है, जैसे—

मादकता से आये वे
संज्ञा से चले गये वे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे वे

इसमे 'मादकता', 'सज्ञा', 'नशे का उतार' जैसी मानसिक परिस्थितियो को उपमान बनाया है जैसे तुलसी कहते हैं—

छविग्रह दीपशिखा जनु बरई।

यहाँ सीता के मूर्त सौन्दर्य को अमूर्त छवि के प्रासाद में जलती

दीपशिखा से उपमा दी गई है। परन्तु प्राचीन काव्य में इस प्रकार के उदाहरण कम मिलेंगे। छायावाद काव्य मे कवि की दौड़ मूर्त से अमूर्त की ओर है। प्राकृत काव्य मे कवि अमूर्त से मूर्त की ओर बढ़ता है। इस पर वह अपने सूक्ष्म भावों को भी स्थूल के सहारे समझा सकता है। परन्तु इस दूसरी पद्धति से काव्य कठिन और प्रयासपूर्ण हो जाता है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि 'आँसू' दोषपूर्ण ही है। एक नए युग की नींव डालने के कारण उसकी ऐतिहासिक महत्ता तो है ही, परन्तु इसमे भी संदेह नहीं कि वह अपने गुणों के लिये ही लोकप्रिय हुआ और ऐसे गुण द्विवेदीयुग के काव्य मे मिलना कठिन था। स्वयं 'प्रसाद' ने कहाँ से आरम्भ किया, यह देखिये—

सावन आये वियोगिन के तन
आली अनंग लगे अते तावन
तावन हीय लगी अवला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन
छावन कैसे कहूँ मैं निवेदन
लगे जुगनू हिय आग लगावन
गावन लागे मयूर 'कलाधर'
झापि कै मेघ लगे बरसावन

(भारतेन्दु, जुलाई १६०६)

यह कविता जिसमें ४ रोला और १ सवैया है, 'सावन-पंचक' के नाम से उस समय प्रकाशित हुई थी, जब प्रसाद 'कलाधर' नाम से लिखते थे। परन्तु काव्य मे नवीन प्रभाव तभी आने लगे थे। 'भारतेन्दु' की इसी संख्या मे कालीशंकर व्यास ने लांगफैलो (अमेरीकन कवि) की 'द लेडर ऑफ सेंट ऑगस्टिन (The Ladder of St. Augustine) कविता का अनुवाद छपा है।

बीस वर्ष बाद ही 'प्रसाद' पूर्व और पश्चिम के सारे काव्य को आत्मसात कर 'आँसू' जैसी मौलिक चीज़ दे सके, इसका कितना बड़ा श्रेय उनकी प्रतिभा को मिलना चाहिये यह कहना कठिन है। जहाँ आरम्भ यह है, वहाँ परिस्थिति देखिये। 'निद्रा' का संबोधन कर 'प्रसाद' कहते है—

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी
नंदनतमाल के तल से
जग छा दो श्याम लता सी
तद्रा पल्लव विह्वल से

यहाँ निद्रा स्वर्ग की बेलि है। नंदनतमाल के नीचे उगी है। तमाल कृष्णवर्ण है। अतः वह भी काली है 'तंद्रा' उसके पल्लव हैं। निद्रा स्वर्गीय है। पृथ्वी की वस्तु नहीं। यही मंतव्य है। इसे किस खूबी से प्रसाद व्यक्त करते हैं। परन्तु साथ ही साथ प्रसाद उसके सुख की इंद्रियातीतता की ओर भी इंगित करते हैं। निद्रा का सुख 'स्पर्शहीन अनुभव' मात्र है। सौन्दर्य के चित्र के साथ मनःस्तत्त्व का कितना सुन्दर गठबन्धन। मूर्तिमत्ता के प्रयोग तो अद्भुत है। प्रसाद की कल्पना की आँख अनुभूति के तल से उठ कर अमूर्त्त भावों और अवस्थाओं को भी साकार कर लेती है। 'वेदना' के लिए—

वेदना विकल फिर आई
मेरी चौदहों भुवन में

विरह दु:ख की तीव्रता और व्यापकता का चित्र है—

यह पारावार तरल हो
फेनिल हो गरल उगलता
मथ डाला किस तृष्णा से
तल में बड़वानल जलता (७६)

यहाँ वही चित्र उपस्थित हो जाता है जिसे पंत ने

शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर

मे प्रगट किया है।

जहाँ अत्यन्त सीधी-सादी, स्निग्ध, प्रसादपूर्ण पंक्तियाँ हैं, जैसे

शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा
मैं सिहर उठा करता हूँ
बरसा कर आँसू-धारा (६८)

वहाँ कल्पना ऐश्वर्य से अतिरंजित चित्र भी हैं जो काव्य को ए विशेष वर्गगत संस्कार में बाँध देते है—

मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते
मकरंद भार से दब कर
श्रवणों में स्वर जा बसते (७२)

जो हो, 'प्रसाद' की सारी दुर्बलता और उनकी सारी शक्ति 'आँसू मे स्पष्ट है। 'कामायिनी' के रहते हुए भी 'आँसू' ही प्रसाद वे व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है।

'आँसू' के आलोचको ने प्रसाद के मनःस्तत्त्व को न समझते हुए उसकी कई प्रकार की व्याख्याएँ की है :

(१) "आँसू ऐश्वर्यमय अतीत का क्रन्दन है।"

(२) "आँसू प्रेम-विरह-मूलक सांकेतिक काव्य है।"

(३) "आँसू जीवात्मा-परमात्मा के संबन्ध का व्यंजक अध्यात्म काव्य है।"

(४) "आँसू विशेष वाग्भंगिमा-प्रधान काव्य है।"

इस प्रकार की चार स्थापनाएँ इस संबन्ध में चल रही हैं। वास्तव मे प्रसाद ने काव्य के रूप-रंग में इतना परिवर्तन कर दिया है कि नए संस्करण (१६३३) में उसका पुराना (१६२५ के संस्करण) वाला

रूप छिप गया है। इसमें तो संदेह नहीं कि आँसू की प्रेरणा लौकिक प्रेम और विरह है। अध्यात्म से उसका संबन्ध पहले संस्करण मे नही जुड़ पाया था। कवि ने किसी से प्रेम किया था, और उस सौन्दर्य पुत्तलिका के नख-शिख के वर्णन भी मिलते है। ऐसी अवस्था में उसे किसी भी प्रकार आध्यात्मिक या रहस्यवादी काव्य नही कहा जा सकता। यह भी संभव है कि 'आँसू' में प्रसाद की ऐश्वर्यप्रधान मूर्त्तिमत्ता ऐश्वर्यमय अतीत का क्रंदन हो। प्रसाद उस समय तक उतार-चढ़ाव देख रहे थे। उनके लिये प्रेम की असफलता ऐश्वर्य के नाश का प्रतीक बन गई हो, तो कोई आश्चर्य की बात नही। परन्तु जो बात 'आँसू' मे विशेष आकर्षक है, वह है उसकी वाग्भंगिमा। 'झरना' में ही प्रसाद ने एक विशिष्ट काव्य-शैली ग्रहण कर ली थी। 'आँसू' इसी विशिष्ट शैली का विकास मात्र है। "छायावाद" शीर्षक एक निबंध में उन्होंने इस शैली की विशेष व्याख्या उपस्थित की है। कदाचित् 'आँसू' को ही ध्यान मे रख कर वे कहते हैं:

"वाह्य उपाधि से हटकर अन्तरहेतु की ओर कविकर्म प्रेरित हुआ। इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिये जिन शब्दों की योजना हुई, हिन्दी में वे पहले कम समझे जाते थे; किन्तु शब्दों मे भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष का नवीन अर्थ द्योतन करने मे सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण मे शब्दों के इस व्यवहार का बड़ा हाथ होता है। अर्थबोध व्यवहार पर निर्भर करता है, शब्दशास्त्र मे पर्यायवाची तथा अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण है। इसी अर्थ-चमत्कार का महात्म्य है कि कवि की वाणी मे अविद्या से विलक्षण अर्थ साहित्य में मान्य हुए। ध्वनिकार ने इसी पर कहा है—

प्रतीममानं पुनरन्यदेववस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। इसके लिये प्राचीनों ने कहा है—

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।

मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही कान्ति की तरलता अग मे लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित मे कहा है—

प्रतिभाप्रथमोद्भेद समये यत्र वक्रता
शब्दाभिधेययोरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते।

शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और क्रांति का सृजन करती है। इसके वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है।"

'प्रसाद' ऐसे ही विदग्ध कवि है। 'आँसू' मे हम उन्हे सहज कवि के रूप मे नहीं देखते। अतः 'आँसू' की परख सहज काव्य के आधार पर नहीं होनी चाहिये। छायावाद काव्य मे प्रसाद ने कई उपकरण माने हैं :

(१) शब्दो के नवीन सार्थक प्रयोग,

(२) (छायामयी वक्रता के लिये) सर्वनामो का सुन्दर प्रयोग, जैसे 'वे आँखे कुछ कहती हैं' 'ये' 'वे'।

(३) वैदग्ध्यभंगी (शब्द और अर्थ की वक्रता) जिसके द्वारा अर्थवैचित्र्य और चमत्कार की सृष्टि हो।

(४) आन्तरसारूप्य-प्रधान उपमाओं का प्रयोग। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उपमायें उनसे कुछ अधिक हैं।

इस प्रकार 'आँसू' एक नितान्त नया काव्य है। ध्वनि, लक्षणा-व्यंजना, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान, उपचार-वक्रता और स्वानु-

भूति से पूर्ण यह काव्य अपने ढंग का अनोखा है। 'प्रसाद' ने प्राचीनों का सहारा लेकर इस नई काव्यशैली को प्राचीन मान्यता देने का प्रयत्न किया है। वह ऐसा नही करते, तो भी कोई हानि नही थी। प्राचीनो का सहारा न पाकर कोई काव्य छोटा नहीं हो जाता।

आधुनिक काव्य के सबध में 'प्रसाद' कहते हैं: "प्राचीन साहित्य मे यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिये अत्यंत आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सोधी वक्रोक्ति न थी। बाह्य से हट कर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।"

यही नवीन अभिव्यक्ति आज भी पाठक और कवि के बीच मे एक बड़ी बाधा के रूप मे खड़ी हो जाती है। इसीसे 'आँसू' पर अस्पष्टता का लांछन लगाया जाता है। वास्तव मे, 'आँसू' की अस्पष्टता इसी लिये है कि पाठक नई काव्य-कला से परिचित नहीं हो सका है।

इसी से नीचे हमने 'आँसू' के छन्दो की सहज टीका उपस्थित की है। इससे 'प्रसाद' की वाग्भगिमा का पता चलेगा और उनके काव्य रस को सरलता से ग्रहण किया जा सकेगा, ऐसी आशा है। आधार १६२५ वाला संस्करण है। यहीं हमें 'प्रसाद' के प्रकृत रूप के दर्शन होते है। इस संस्करण का ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है।

## १६२५ के पहले संस्करण के आधार पर 'आँसू' के छंदों की सहज टीका

१

अपने दुःख की तीव्रता और अगाधता से कवि चकित है

करुणा से भरे हुए (सुन्दर) इस हृदय मे वेदना का उद्रेक कैसा? कैसी करुण रागिनी बज रही है। जान पड़ता है, हृदय असीम समुद्र हो गया है और वेदना की झंझा उसमें हाहाकार उठा रही है।

२

परन्तु आश्चर्य इस भयंकर दुख मे भी पुरानी बातों की स्मृति सुख भर देती है।

फिर भी मन-रूपी समुद्र मे सुन्दर लहरे कभी-कभी उठ आती हैं! वे पिछले दिनों की मीठी बातें सुनाती हैं चुपके-चुपके? ऐसा क्यों है?

३

इस बीते सुख के लिए क्रन्दन व्यर्थ है।

(परन्तु उन बीते दिनों को मैं लौटा नहीं सकता)। मैं चिल्ला उठता हूँ। मेरी प्रतिध्वनि सूने क्षितिज से टकरा कर (व्यर्थ) लौट आती है। वह भी मेरी तरह विशृङ्खल और पागल हो जाती है।

४

प्रकृति में दुखों का आक्षेप

(कवि को अस्तित्व ही दुखमय जान पड़ता है)। मेरे अस्तित्व में दुःख

( साथ ही पुरातन स्मृतियों की मिठास ) की तुमुल क्रीड़ा होती है ( लहरें उठती हैं ) । यह आकाशगंगा जैसी असीम है, वैसी ही मेरी अस्तित्व की नदी है, वैसी ही निष्फल, व्यथित सी ।

५

( प्राकृतिक व्यापार भी उसे प्राकृतिक नही लगते ) । जान पड़ता है, उषा मेरे दुख में रोती है । संध्या मेरे स्वर्ण सुखों पर ढकती आती है निराशा की अलकें । ( मेरे प्रात:सायं प्रकृतिरस से हीन, दुखी पल मात्र हैं ।

६

जान पड़ता है, पिछले सुख के छूटने की पीड़ा जो मन में वर्षों से एकत्रित हो रही है, आज सघन होकर आँसू के रूप में बस रही है ।

सुख स्मृति से ही दु:ख है ।

७

हृदय मे आग जलती है, परन्तु यह आग प्रगट नही होती, इसलिए अधिक दु:ख देती है । आँसू इसे और उत्तेजित करते है । मेरा जीता रहना इसे और भी भड़का देता है ( इस आग को और तीव्रता दे देता है । )

इसने मेरा जीवन यों ही असार्थक बना दिया है ।

८

बेकार साँसों का बोझ ढो रहा हूँ। मेरा सुख आहत है। उमंगें शांत है। यह हृदय समाधि बन गया। स्वयं करुणा इस समाधि पर रोती है।

अब जीवन का व्यर्थ भार ढोता हूँ।

९

इसी हृदय में स्मृतियों की एक बस्ती बस गई है। जैसे इस नीले (अंधकार-पूर्ण) आकाश मे असंख्य तारे हो।

ये सुख स्मृतियाँ इतनी अधिक हैं जितने आकाश के तारे।

१०

ये तारे नहीं, मेरे जलने से जो चिनगारियाँ निकलती है, वे है। इस अग्नि में तपना ही तुम्हारा मिलना था। इसके शेष चिह्न ये जलते स्फुलिंग रह गए है।

११

चातक की पुकार पर मुझे आश्चर्य होता है। श्यामा की ध्वनि मीठी लगती है। परन्तु इनमें तो दुःख और आँसू भरी मेरी कथा का अंशमात्र ही प्रकाशित हुआ है।

प्रसिद्ध उपमानों के द्वारा कवि बताता है कि श्यामा और चातक से उसका दुःख कहीं अधिक है।

१२

कौन सुनेगा, मेरी दुःख-गाथा? किसे है फुरसत? वे जो सुख में विभोर हैं? वे जिनकी कथाओं ने धीरे-धीरे उन्हें असंवेदनाशील बना दिया है।

उसका दुःख उसके अपने सहने की चीज है।

१३

जो शाम को अपनी गुलाबी मदिरा मे मस्त हैं, वे दूसरो के कठोर जीवन की दुःख-पूर्ण घड़ियों की बात क्या सुनना चाहेंगे ?

१४

( एक हमारी संध्या है ) । जब शाम होती है, कंज बंद हो जाते है। संध्या हमारे लिए सुनहली ( रंगीन ) नहीं हो पाती । धुँधली रहती है । फिर भी आशा बनी ही रहती है । ऐसे समय हम एक-एक घड़ी ( सुखस्मृति ) को याद करके रोते है ।

कमल संकुचित हो गया, अलि बाहर ही रह गया, यह उसकी निठुरता थी। प्रेमिका ने प्रेमी के प्रेम का बदला नहीं दिया ।

१५

अब हृदय को सूना पाकर संसार का सारा दुःख आकर यहाँ भर गया है । बादल उमड़ आये है। बिजली कड़क रही है। आँधी चल रही है। घन-गर्जन है।

दुखद प्राकृतिक उपादानो को सघन ।

१६

अभिलाषाएँ अब भी करवटें बद-लती है ( विरक्ति नहीं है ) । सोती हुई व्यथा जाग जाती है। सुख सपना है। [illegible] सो जाता हूँ ।

अब यह दशा है

१७

यह हृदय अलकों के जाल में फँस जाता है (उसकी याद करता है)। आँसू झरने लगते हैं। वे निःश्वास में मिल जाते हैं।

१८

उनकी वह सुख-स्मृति

यह स्मृति भी क्या मादक थी, क्या मोहमयी। क्षण भर मन अवश्य बहल जाता था। परन्तु हृदय दुःख से (मधुर पीड़ा से) हिल जाता था।

१९

कुछ कहा नहीं जाता। जैसे योगी की जटा बराबर बढ़ती जाय, वैसे जीवन की समस्या बढ़ती जा रही है। यह किसकी प्रेम की विभूति है जो हृदय सूना हो गया है, एकदम बीहड़।

२०

मेरा हृदय कोमल नवनीत था। (स्नेह बनकर) वह तो जल गया। अब धूम्र-रेखा (कज्जल) शेष है। अंधकार ही अंधकार है।

२१

प्रेमभाव के नष्ट होने पर कवि आश्चर्य करता है।

अब तो किंजल्क निखर गया। पराग सूख गया। मन में प्रेम का कमल जो विकसित था, वह कैसे सूख गया, बड़ा आश्चर्य है।

२२

अब तो वे कृपा नहीं करते ! क्यों फिर गई है उनकी कृपाकटाक्ष ? वे ही तो थीं मलय की हिलोरें। क्षण भर हमें छूकर कहाँ छिप गईं।

२३

इस प्रेम-सिंधु से तृप्ति कब हुई है ? रूप देखता रहा, परन्तु मन कहाँ भरा ( जैसे प्रेमसागर में भीतर-भीतर वाड़वानल दहक रहा हो और पानी में रहकर भी मछली अतृप्त रह जाय।

प्रेमी की अतृप्तता

२४

मुरली चुप है। कलरव चुप। अलि मौन। हृदय अंधकार में था। प्रेम की यमुना चुपचाप अवश्य बहे जाती थी।

प्रेम में अब वह बात नहीं रही

२५

मैं तो उस शिरीष कुसुम-सा हो गया जो वसंत रजनी के पिछले पहरों में खिले और प्रभात होते ही धूल में मिल जाये।

२६

उस ( झरे शिरीष ) के व्यापक दुःख के प्रति मलय पवन भी ( विरह रूपी नदी के तीर ) सहवेदना की साँस छोड़ जाता है।

२७

स्मृति की पीड़ा

उस मृदुल चरणों का ध्यान भी दुखद है। हृदय के छाले फूट जाते हैं। आँसू बह-बहकर रह जाते हैं।

२८

ये आँसू सिंधु के बुलबुले हैं। टूटे हुए तारे। अब तो आकाश बाल विखेरे हुए स्त्री की तरह दुखी है। पृथ्वी का सौन्दर्य जैसे लुटा हुआ।

२९

यह तो हमारी अबोधता थी। अकिं-चनता थी, विसुधपन था, कि हम अपने इस दुःख को लेकर, पीड़ा को लेकर, दूसरे के दुःख को ललकारने चले।

३०

कभी ऐसा था

तब मन में मिलन (सुख) और संभाव्य वियोग (दुःख) दोनों ऐसे मिले सो रहे थे जैसे मालती कुंज में चंद्रिका ऊँघती हो।

३१

तब असीम आकाश में इन्द्रधनुष की लहरें थीं। तारे हँसते थे।

३२

अब है नीचे धरती जो दु:ख का भार ढोती है और रो-राकर करुणा के समुद्र को भरती है।

३३

तब और अब

तब मैं स्वयम् को भूल गया था। मन मे मादकता भरी थी। बेसुधी की। कल्पना थी। सपना था। जैसे निर्जन मे मुरली बजती हो।

३४

तब मै मुग्ध था, अल्हड़ था, तुम पर बलि होता था, इठलाता था। हृदय-वीणा के तार खिंचे थे। ऊँची झंकार उठती थी।

३५

अब प्रभात मे उषा की लाली प्रिय के मिलन का संदेश नही लाती। लाती है पीलापन (वेदना)। शून्य दृष्टि से ताकता रहता हूँ तुम्हारा पथ रात भर। प्रात: होते सो जाता हूँ थका हुआ।

३६

मै तो अब खाली जलशून्य बीच हूँ। धरती का अंचल आँसू मोती भरता हूँ, परन्तु मोती कितने हैं।

३७

तब जब हम संध्या के समय मिलते थे, पूर्णिमा की हेय किरणें उसे आलोकित करती थीं। तब यह संभाव्य वियोग की बात क्या हम जानते थे ?

३८

अब संध्या आती है, तो तुम्हारी प्रतीक्षा लिये न जाने क्या मनमानी सोचता हूँ। उषा आती है तो यह आशा निराशा में बदल जाती है। कहानी का अंत हो जाता है।

३९

कितनी एकांत रातें तुम्हारी प्रतीक्षा में तारे गिनते बीती हैं। तुम्हें उपहार के रूप में तारों के दीप जला-जला कर स्वर्गंगा की धारा के भेंट करता रहा हूँ।

४०

तब तुम शशिमुख को घूँघट में छिपाए, हृदय में प्रेम लिए, जब मेरा जीवन विरस होने लगा था, सहसा आ गईं। तुम्हारे इस अप्रत्याशित आगमन पर मुझे आश्चर्य हुआ।

४१

अब तुम्हारी वह मूर्त्ति अभिलाषा बन गई है। (तुम्हारे मिलन की आशा

मात्र है अब)। अब वह मूर्त्ति कामना-कला का सबसे सुन्दर विलास-मात्र है।

४२

अब उसी (काल्पनिक) मूर्त्ति से मन बहलाता हूँ। प्रतिभा अपने भण्डार से उस छवि को सजाने के लिए सुन्दरतम मुक्ता दान करती है।

४३-४४

आँखो मे अब तक यह सुछवि बस गई है। वह तो सजीव प्रतिमा है। बादल मे जैसे बिजली। बिजली मे जैसे तड़प। वह अब मेरे अत्यंत निकट रहती है जैसे आँखो में पुतली और पुतली मे श्यामलता। तुम्हारी छवि की रेखा अनोखी थी। हृदय पर इसका अब भी अधिकार है।

४५

तब हृदय में पतझार था। फुलवारी सूख गई थी। तुम आए। मेरा हृदय नंदित नंदित हो गया। क्यारियाँ हँसने लगी।

४६

माधवी-कुंज़ो मे प्रेम का अमृत-निर्झर झरने लगा। तुम्हारी मोहिनी

छवि की माया में मंत्र से जैसे मुग्ध हो,
मेरी चेतना वेसुध बहने लगी।

४७

सौन्दर्य की अपार राशि थीं तुम। लावण्य-शैल भी तुम्हारे ऊपर राई की भाँति छोटा होकर न्यौछावर था। कैसी कला थी ? क्या प्यारी छवि थी ?

४८

यह अलकों में घिरा हुआ मुख। इन काली शृंखलाओं में चन्द्रमा को किसने बाँध रखा था। तुम्हारी वेणी में रत्न गुँथे थे मुझे आश्चर्य हुआ कि जिन सर्पों के पास मणि है, वह हीरों को क्यों मुँह मे भरे है।

४९

नखशिख

तुम्हारी आँखों मे जीवन के मद की लाली थी। जैसे नीलम की प्याली में किसी ने लाल मदिरा भर दी हो।

५०

या समुद्र में नीलम की नाव तैरती हो। अञ्जन-रेखा जैसे समुद्र तट है। पुतली नीलम की नाव !

५१

तुम्हारे पलकों ने न जाने कितने हृदयों को घायल कर दिया। तुम्हारी

इन्ही। सुन्दर पलको ने तूलिका बनकर न जाने कितने घायलो के चित्र बना दिये।

५२

तुम्हारे स्वस्थ कपोलों पर मुस्कान की हलकी भोली रेखा। तुम्हारी भौ के संकोच मे छिपी थी कुटिलता।

५३

होठ तुम्हारे विद्रुम। सीपी-संपुट। दाँत मोती की पाँत। तुम्हारी नासिका शुक। यह हस नहीं है, मोती के दाने ऐसे क्यों रखे गये है जैसे उन्हे चुगने के लिए रखा हो।

५४

तुम्हारी हँसी इतनी मोहक है कि प्रभात-कालीन खिला हुआ कमल वन भी लज्जित हो जाये।

५५

तुम्हारे कान किसलय-पत्र। दूसरे के दुःख की बात तुम सुनते हो। वह तो जलबिन्दु की तरह आप ढुलक जाती है।

५६

तुम्हारी बाहुलाए अनत के धनु-की दो-दो (दुहरी) शिजिनी (प्रत्यंचा) हैं या तन रूपी सरोवर की दो लहरे।

५७

तन-द्युति ऐसी थी कि बिजली चाँदनी में नहा कर आई हो।

५८

यह तुम्हारा अभिसार मेरे लिए गौरव का विषय था। तुम मुझसे मिलने आईं। उतर कर। मै उठता हुआ। जैसे निर्धन प्रभात को धनी बनने का स्वप्न देख रहा है।

५९

तुम्हारी-रूप माधुरी भी विषयाली। अब नेत्रो मे मदिरा बन गई। अब वह सौन्दर्य दर्शन मन मे उतर आया है।

६०

वह छलना थी। मै सच समझ रहा था। इस विश्वास के कारण ही मै स्वयं सच्चा अनुभव करता था।

६१

अब रो-रोकर, सिसक-सिसक कर उनसे विरह की कहानी कहता हूँ। वे फूल नोचते रहते हैं। सुनते रहते हैं।

६२

मैं कहता हूँ, यह संसार मेरे लिए मिथ्या रहा। केवल एक तुम्हीं सत्य,

नित्य। क्या तुम अस्वीकार करोगे कि इस कल्याण-मार्ग के तुम मेरे साथी नहीं थे ?

६३

माना कि तुम्हे अपने यौवन का गर्व है। परन्तु मेरे निःसीम हृदय मे तुम एक बार आए थे।

६४

तब तुम क्या रूप-रूप थे ? या हृदय भी थे ? क्या मुझे चैतन्य (सवेदना-शील) समझकर ही यह पत्थर जैसा कठोर खेल खेला।

६५

जब मेरी कुटिया पर निराशा और दु'ख की प्रलय-घटाएँ छा जाती थीं, ऐसा अंधकार हो जाता था, जैसे, काला चूर्ण बिखेर दिया गया हो।

६६

तब बिजली की-सी तुम्हारी मुस्कान (स्मृतिपटल पर) अंकित हो जाती थी। मन मे रस की बूँद कौन बरसाता था तब।

६७

तुम्हारी अमृत-वर्षा से हृदय तरल रहता था। आँसूओं के मोती से मेरा हृदय-मन्दिर मंडित रहता था।

६८

अब तुम दूर हो। तुम्हारा पावन स्पर्श कर शीतल समीर आता है। मै आँसू की धारा बहा कर सिरह जाता हूँ।

६६

कैसे थे वे दिन मिलन के! अब मैं आलिगन (-कुंभ) की मदिरा पीता था। तुम्हारी निःश्वासो के झोके जैसे मलय क्रीड़ा कर रहे हों। सुबह जाग कर तुम्हे ही देखता था मित्र।

७०

रात बीत जाती थी। तुम्हारा मुख मेरी गोदी मे रहता। तब आकाश में तारे छिटके होते जैसे अंबरपट पर मिलन- रोमांच के स्वेदकण।

७१

प्रेय-मिलन के अवसर पर वसंत का वर्णन

पत्तों मे छिपे किसलय प्रेम से रोमांचित हो कंपित हो जाते। डालियाँ आलिंगन मे बँधी होतीं। वे प्रसन्न हो फूलों को चूमतीं। भौरे तान छेड़ते।

७२

तब (मिलन-) मुरली बज उठती। मुकुल खिल जाते। मकरन्द भार से पवन मन्थर हो जाती। उस भार से दब

कर ( कोकिला के ) स्वर कर्णगुहर में प्रवेश करते ।

७३

जब तुम्हें पहले-पहल देखा था, तब वसंत की पूर्णिमा थी। लगा, तुम न जाने कब से परिचित हो।

७४

तुमसे परिचय ही क्यों ! जैसे चंद्रमा और समुद्र का परिचय। कहाँ आकाश चारी किरणें, कहाँ पृथ्वी पर समुद्र, परन्तु किरणें ऊपर से आ लहरों के गले लग जाती हैं। इसी तरह अप्रत्याशित था हमारा-तुम्हारा मिलन।

७५

तब हृदय में कामना का समुद्र तुम्हारी छवि की पूर्णिमा मे लहराता था। तुम्हारी परछाईं जैसे रत्नराशि हो, अमूल्य निधि।

७६

अब यह समुद्र फेनिल है, आग उगल रहा है। किस तृष्णा ने हमें मथ डाला ? कौन-सा वाड़व इसके तल मे जल रहा है।

७७

अरे नहीं, समुद्र तो सूख गया। मेरे मन की नौका सूखी सिकता में पड़ी रह

गई। प्रेम ने जो आँसू की धारा बहाई तो बिना रज्जु की यह नौका अकूल, अदेश बह चली।

७८

देखा मैंने, नाविक (प्रिय!) (निराशा का) अंधकारपूर्ण समुद्र है। उसमें मेरी (गुण-हीन) नाव (निर्बंध) तिर रही है। लगता है, अब किनारा लगा, अब तट लगा। तुम्हारी मुख छवि का आकर्षण उसे बराबर (आशा) तट की ओर खींचता।

७९

परन्तु हम परतंत्र (सौन्दर्य के सहारे ही सही) जीवन में क्या रखा है? केवल ममता जागती थी। तुम्हारी प्रेमज्योति हृदय मे जलती थी।

८०

तुम जैसे मेरे हृदय के चंद्रमा हो। तुम्हारी शीतल किरणे भर पाता हूँ (स्मृति के सहारे) परन्तु अंगारे (विरह) चुगता हूँ चकोर की तरह। देखो यह सौन्दर्य-प्रेम की माया। वलिहारी मैं।

८१

आश्चर्य है मुझे! मेरे कठोर हृदय को भी (जो हीरे जैसा कठोर था)

शिरीष-जैसे कोमल तुम्हारे सौन्दर्य ने कुचल डाला। आश्चर्य है, प्रेम को तो हिमवत् शीतल कहते हैं। तुम्हारे प्रेम ने विरह से मुझे जला डाला, जैसे अग्नि ने।

८२

मैं तो पतंग हो गया। जलना ही मेरा संबल रह गया है। उसे ही लेकर (दीपक जैसे) तुमसे मिलता हूँ। जल जाता हूँ, तो प्रसन्न हो जाता हूँ, फूल-समान खिल जाता हूँ।

८३

अनंत आकाश के समान मेरे हृदय में चंचल बिजली की तरह आकर अब चले गये, रह गई इन्द्रधनुष की झाँई भर।

८४

परन्तु वह तुम्हारा (विद्युत - प्रेम) रंग तो अब छुटता नहीं। ऐसा रँग गया है यह हृदय! अनोखा रंग है। आँसू से और निखरता है।

८५

इस संसार को मुझ जैसे व्यथित की क्या गणना? यहाँ सुख है, दुःख है। सुख-दुःख के उत्थान-पतन को झेल कर

यह नष्ट भी हो जायगा। वह क्यों मुड़कर देखे, किसका हित-अनहित होता है।

८६

यहाँ तो पृथ्वी में दुःख ही दुःख है। (पृथ्वी माँगती है दुःख, और दुःख!) मनुष्य का जो सुख है, वह दैव (आकाश) छीन लेता है। मैंने तो अपने को ही पृथ्वी-आकाश को दे डाला (मैं मूर्त्तिमान दुःख हूँ)। अब तुम्हारा मुख देख रहा हूँ कि तुम क्या कहते हो?

८७

इतना बहुत था सुख! कैसे समाता इस पृथ्वी-आकाश के बीच, इस जल-थल में। तुमने आश्वासन दिया। छल से उसे मुट्ठी में बन्द कर लिया।

८८

तुम्हें मेरे सुख में कम दुःख था जो मुझे छला। मुट्ठी मे भर कर यों भाग गये। जैसे नींद मे कोई चुंबन ले ले। अभी सुख मिला भी कितना था—जैसे सोता हुआ चुंबन के सुख से सिहर भर जाये।

८९

क्षण भर मे इतना सुख लेकर तुम मेरे जीवन के बीच से चले गये। अब ये प्राण विकल हो रोते हैं।

९०

तुम्हारे रहते तो मैं मृत्यु को सुख मान लेता। तुम्हारे रहते मृत्यु भी नहीं आई, इसका दुःख था। वही मृत्यु अब वेदना भरी तड़पाती है, जैसे बादलों में बार-बार बिजली कौंधती हो।

९१

यह मायावी छल सौन्दर्य के परदे पर आकर बीन बजाता है। हम मुग्ध हो जाते हैं। यह आश्चर्य-भरी संध्या के अंचल में अपना छल (माया = कौतुक) भर जाता है।

जीवन-मृत्यु - मय रहस्य दर्शन

९२

काल (समय) के काले पट पर अस्पष्ट कुछ निष्ठुर (कठोर) रेखाएं पड़ी रह जाती है। सुख-दुःख की जीवन-रेखा यहीं निःसार पड़ी रहती है।

९३

तुम्हारी अलकों के सौन्दर्य में मेरा जीवन फँस गया। जब मैं विसुध, असतर्क, अपलक था, तब किसने मेरी जीवन-मदिरा पी ली।

९४

अब कामना की प्यासी लहर मन में उठ रही है। (जीवन के आवर्त्त-विवर्त्त)

जीवन के आवर्त्त-विवर्त्त

भँवर नहीं हैं, खाली पात्र है, सूने प्याले! ये तो उलटी थालियाँ है, जो तुमने मेरे जीवन (मन) का मधु पीकर लुढ़का दी हैं।

६५

वसंत की मालती कोमल पत्रों के उपधान के सहारे सोती है। मै व्यर्थ की प्रतीक्षा मे तारे गिनता हूँ।

६६

तारे मुझे आकाश में ऐसे लगते हैं जैसे चमकीले, जूही के फूल हों। जैसे चंद्रमा कमल को खिला दे, वैसे ही यह सुन्दर हैं, कमल जैसे तारे! क्या तुमने यह तारे खिलाए हैं?

६७

मत कहो कि कलियों के जीवन की सार्थकता यही है कि जब मकरंद से भर जाये, तो बेमन कोई तोड़ ले (इसी तरह न तुमने मेरा जीवन नष्ट किया!)

६८

क्या हानि थी, इस छोटे जीवन में वृत (डंठल) पर ही वह बिता देती? चुप-चाप एक दिन झर जाती। (इस जीवन में तुम क्यों आये? क्यों उसे असमय कुचल दिया?)

९९

(अब मेरे लिए प्रलय शेष ही है!)
मेरा विश्वास मलय में उड़ता फिरेगा,
दूर-दूर ग्रहों-तारों से टकराता हुआ,
विशृंखल, पागल! अंतिम किरणें बिखेर
कर चंद्रमा भी छिप जायेगा।

१००

अब उस मिलनकुञ्ज मे क्या वैसी
चाँदनी होगी, जब वह मिलन सुख था?
जब हम तुम अलसाए-अलसाए रहते थे।
चाँदनी भी अलसाई रहती थी तब!

१०१

तब (प्रेम की) उलझन मे आनन्द
था, विश्राम था, शांति थी। वह बंधन
था। परन्तु सुख उस बंधन मे बँध
गया था। करुणा का नाम भी नही था।

१०२

अब उन मतवाले दिनो की स्मृति
आती है। जैसे पराग के मेघ उमड़
आते हो, उससे रस की बूँदे पाकर इस
हृदय वन की कलियाँ अब भी मुस्कुरा
उठती है।

१०३

तब एक दिन तुमने कहा था—समझ
नहीं पाया। फिर बात क्या थी? क्या

वे दिन सपना थे ? उन्होंने आश्चर्य से पूछा, मै कॉप उठा। मुग्ध हो उठा।

१०४

मुझे दुःख था। उन्हें इसी में सुख। मेरे आँसू, मेरे दुःखो से तो उनका सौन्दर्य बढ़ता ही है।

१०५

तुम रूठ गये। मेरी करुणा की वीन और भी झंकृत हो उठी। अब मुझे अपनी दीनता में ही गर्व है। मेरी पीड़ा ने साहस जान लिया है।

१०६

तुमने मेरी प्रेम की मदिरा का पान किया। प्रिय थी। बड़ा आनन्द आया। अब क्रोध भरे नाटक के साथ प्याला देकर मुझसे आँखें फेर ली।

१०७

मेरे रोने में क्या आनंद है, जो तुम मेरा क्रन्दन सुनते हो ? यह आँसू तुम्हे अच्छे लगते हैं ? इन ताने-बाने से तो तुम अपनी सुन्दरता का श्रृङ्गार करुणा-पट बुनते हो।

१०८

वह मेरे प्रेम की मदिरा से जो भ्रम उत्पन्न हो गया है, उसे छोड़ दो। मेरे

हृदय में आओ। तुम्हारे बिना यह हृदय सूना है, अब यहाँ ढूँढने पर भी कुछ नहीं मिलेगा।

१०९

मेरी आहे तुम्हें खींच लायेगी, तुम्हें जो आज तने हुए बैठे हो। तुम मेरी बढ़ी हुई व्यथा को देख कर रोओगे। तब मुझे अपनाओगे।

११०

तुमने मुझे धूल मे बिखेर दिया। परन्तु यह प्रेमी हृदय वहाँ भी चमकेगा। मेरे प्रेम का सौरभ दिग्दिगंत उड़ेगा। ग्रह-ग्रह उड़ता हुआ मै तुम्हे ही खोजूँगा। कहाँ भी मिलूँ, तुम्हें ही आत्मसमर्पण करूँगा।

१११

मनोरथ के धूल की अंजलि तुम्हारे ही चरणो पर मैंने बिखेरी है। कीट को भाँति अपवित्र समझ कर इन फूलों को कुचलो मत। देखो, इनमें कुछ मकरन्द-कण (मूल्यवान) भी है।

११२

जब मैने प्रेमपथ पर पैर रखा था तो तुम प्रेम का शीतल मणिदीप लेकर मार्ग दिखलाने आये थे। अब यह हृदय

(विरहाग्नि से) जल उठा है। पावकपुंज जल गया। ज्वाला की लपटें (लटें) उठ रही हैं।

११३

उपालंभ

हे नाविक (प्रिय, प्रेम)! यह तट तो सूना है। यहाँ कहाँ ले आया। यह तो बीहड़ है। क्या अब तक यहाँ कोई आया था ?

११४

सब क्या लौटा जा सकता है उस पार ? उस पार है कहाँ! वे बातें भी अब विस्मृत-विस्मृत, धुँधली-धुँधली रह गई हैं। अंधकार (निराशा) ने उन्हें ढक लिया है। होता तो इधर पैर ही नहीं रखता। यह तो प्रेम की पीडा है, छल की भर्त्सना है, जो दुःख देती है।

११५

लौटने का सहारा भी अब कहाँ ? लौटने के पथ में चरण-चिन्ह भी नहीं रहे। सब विस्मृत हो गया। इतने आँसू उमड़े हैं कि मरुभूमि भी डूब जाये। अब पद चिन्ह कहाँ कि उनका अनुसरण करता हुआ लौट जाऊँ।

११६

अब चाहे अनंत शून्य हो सामने, पीछे लौटना असंभव है। किनारा चाहे

मिल भी जाये, पर तिरूँगा कैसे ? अब शक्ति नहीं रही। सहारा नहीं रहा ! मैं तो अपदार्थ हो रहा हूँ आज।

११७

वेदनापूर्ण मन चारों ओर घूम आया। कहीं सुख दिखाई न दिया। जीवन में विश्राम कहीं नहीं मिला।

११८

अब विश्राम है केवल उच्छ्वास और आँसू में। अब विश्राम है रो-रोकर सो जाने में।

११९

वह आये, जैसे पल भर मादकता आ जाये। कैसा सुख था, कैसी विस्मृति थी। चले गये, तो कितना दुःख है जैसे सञ्ज्ञा अचेतन हो उठी हो। जैसे नशा उतर गया हो, अब व्याकुल पड़ा रोता हूँ।

१२०

निष्ठुर, ऐसा छल गया, यह छिपना क्या। क्या मेरा अपना कोई भी नहीं रहेगा ? अब तो विरह-रात होगी। हम होंगे। दुःख होगा। (यही संगी-साथी है)

१२१

यह तो मानव जीवन है। यहाँ सुख-दुःख की समरस्या तो विरह-मिलन का परिणय चलता है। में संतुलन की खोज

सुख-दु:ख तो नाचते हैं दोनो। खुला मन हो, तो देखो। यह तो मन-आँख का खेल है।

१२२

यह नियति (भाग्य) नटी की तरह नाचती है। मनुष्य को लेकर कन्दुक-क्रीड़ा करती है। इस तरह दु:ख से भरे संसार (के आँगन) मे अपना मन बहलावा करती है। (दैव मनुष्य को लेकर खेल करता है।)

१२३

चाहिये तो हमें कि निःसंग, निर्लिप्त होकर रहें। सुख-दु:ख में उदासीन होकर सुख-दुख को एक बना दें। अहंकार का त्याग कर इन (सुख-दु:ख) दो रूठे हुओं को मिला दें।

१२४

दु:ख के साथ है वेदना के मेघ। यहाँ न सुख के चंद्रमा का ही चिरशीतल प्रकाश हो, न दु:ख के रवि का चिरताप।

१२५

समय आयगा, जब दु:ख भी भुला दिया जायेगा। विस्मृति (की समाधि) पर कल्याण (-रूपी मेघ) की वर्षा होगी।

तब दुःख की चिंता छूट जायेगी। सुख थका हुआ सो सकेगा।

१२६

तब यह दग्ध करने वाली स्मृति, यह चेतना (-लहर) नहीं रहेगी। जीवन (-समुद्र) में शांति आ जायेगी। प्रलय (-वेदना का झंझा) की संध्या (अंतिम अध्याय) हो जायेगी। यही विच्छेद तब अनंत मिलन में बदल जायेगा।

'आँसू' के इस 'उल्था' से 'प्रसाद' के भावों के संघात का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है। अधिकांश काव्य में उपालंभ-मात्र है। प्रेम-प्रेमिका के वे मिलन दिन कितने सुख के थे! विरह के दिनों में उनकी स्मृति उमड़ती है और प्रेमी कवि आकुल हो उठता था। वे प्रभात, वे सायं, वे चंद्रिका से धोई हुई रातें। अब तो एकाकी जीवन बिताना है, अकेले तारे गिनना है। अंत में उपालंभ देते-देते कवि थक जाता है। इस विचार से उसे शांति मिलती है कि 'समय आयेगा, जब दुःख भी भुला दिया जायगा।' वह सोचता है—यह तो मानव जीवन है, इसमें विरह-मिलन का परिणाम चलता ही रहता है। सुख-दुःख विरह-मिलन ये दोनों तो मन के खेल हैं। अतः हताश होना कैसा। समय का प्रवाह दुःख-सुख के आवर्त्तों-विवर्त्तों के ऊपर एक महान शांतिचक्र की भाँति बहता रहता है। यह दार्शनिक निस्पृहता उसे शक्ति देती है। वे निश्चेतन रह कर उस दिन की प्रतीक्षा करने लगता है जब,

चेतना लहर की न रहेगी
जीवन समुद्र थिर होगा
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा

जिस समय मन निःस्पृह भाव से सुख-दुःख से ऊपर उठ जायगा, उस समय प्रेमी के मन को शांति प्राप्ति होगी, वेदना की झंझा रुक जायगी और तब यही विच्छेद अनंत मिलन में बदल जायगा।

'आँसू' के दूसरे संस्करण ( १६३३ ) मे छंदो का क्रम बदल दिया गया है और कुछ नये छंद भी जोड़ दिये गये हैं। इन छन्दो मे वह आत्मीयता नही है जो पहले संस्करण के छन्दो में हैं, और इन्होने काव्य के साथ कितना उपकार किया है, यह चिंत्य विषय। फिर भी कुछ नवीन उद्‌भावनाएँ सुन्दर हैं। कवि रात से प्रार्थना करता है—

निशि, जो सोये जब उर मे
ये हृदय व्यथा आभारी
उनका उन्माद सुनहला
सहला देना सुखकारी

( हे रजनी, जब मेरे हृदय मे ये मेरी व्यथाएँ थक कर सो जायें, तो धीरे-धीरे उनका मस्तक सहला देना, जिससे उनका उन्माद दूर हो जाये। वे तेरी आभारी होगी )

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी
नन्दन तमाल के तल से
जग छा दो श्यामलता-सी
तन्द्रा पल्लव विह्वल से
सपनों की सोनजुही सब
बिखरे, ये बन कर तारा

सित सरसिज से भर जाये
वह स्वर्गंगा की धारा

( तुम तो स्पर्शहीन सुखानुभव मात्र हो, रजनी ! तुम तो नन्दनवन के तमाल के नीचे उगने वाली श्यामलता हो। तुम्हारी छाया तो स्वर्गीय है। उठो और इस आकुल विश्व को छा लो। सोनजुही-से ये सपने तारा बन कर आकाश मे बिखर जायें। आकाशगंगा में श्वेत कमल खिल उठे। इस प्रकार मेरे व्यथित हृदय से ईप्सित सुखस्वर्ग का मिलाप हो। )

वेदना का बड़ा सुन्दर चित्रण कवि ने इन छंदो में उपस्थित किया है—

जब नील निशा अंचल में
हिमकर थक सो जाते हैं
अस्ताचल की घाटी में
दिनकर भी खो जाते हैं
नक्षत्र डूब जाते हैं
स्वर्गंगा की धारा में
बिजली बन्दी होती जब
कादम्बिनि की कारा में
मणिदीप विश्वमदिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला
उत्ताल-जलधि-वेला में
अपने सिर शैल उठाये
निस्तब्ध गगन के नीचे
छाती में जलन छिपाये

संकेत नियति का पाकर
तन से जीवन उलझाये
जब सोती गहनगुफा में
चचल लट को छिटकाये
यह ज्वालामुखी जगत की
वह विश्ववेदना बाला
तब भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला

इन पक्तियों में कवि अपनी वेदना को चिर-जागरूक देखता है। रामचरितमानस में तुलसी ने सीता के सौन्दर्य को व्यंजित करते हुए लिखा है—छविग्रह दीपशिखा जिमि बरई। जान पड़ता है 'प्रसाद' ने यहीं से संकेत लेकर एक सुन्दर मूर्ति उपस्थित की है। जब संध्या के समय सारा विश्व निर्जन-नीरव लगने लगता है तब इस संसार की तप-भूमि में केवल वेदना जागती रहती है—

मणि दीप विश्व मदिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला

कितना सुन्दर चित्र है। कवि ने वेदना को स्वर्गीय अनुभूति से जीवित, स्पदित बना दिया है।

कुछ दूसरी पक्तियों मे कवि अपने प्रेम को जगाता है—वह प्रेम कैसा है, जीवन जिससे धन्य हो जाय, मृत्यु हो, परन्तु मृत्यु के आगे जो अमरता है, वह भी मुस्कराती हुई सामने आये। इस प्रकार 'लाग डाट' उर्दू काव्य की विशेषता है, हिंदी का पाठक टीका बिना इसे समझ नहीं सकता। कवि प्रेम से कहता है—

मेरी आहों में जागो
सुस्मित में सोने वाले
अधरों से हँसते हँसते
आँखों से रोने वाले

परन्तु स्पष्ट रूप से वह क्या कहता है। व्यंजना यह है, प्रेम मिलन में सोता रहता है, वह वियोग मे ही जाग कर क्रियाशील हो जाता है। उसके होठों पर फिर भी हँसी रहती है, आँखो मे आँसू रहते है। वह अपने हृदय मे फिर अतीत का अनुभव चाहता है। कहता है—

इस स्वप्नमयी ससृति के
सच्चे जीवन तुम जागो
मंगल किरणों से रंजित
मेरे सुन्दरतम, जागो

प्रम ही 'सचा जीवन' है। कवि के लिये वह 'मङ्गल'मय है, सुन्दरतम है। चाहे वह 'स्वप्न' 'स्वप्न' हो, परन्तु उसके लिए वही सत्य है। इससे वड़ा सत्य पाना वह नहीं चाहता।

'प्रसाद' के इस प्रेम-काव्य के समझने मे एक वड़ी कठिनाई यह है कि वे उर्दू-फारसी के काव्य से काफी प्रभावित है और उनकी संस्कृतगर्भित भाषा और लक्षणा से प्रभावित पाठक यह वात जान नहीं पाता। इसका फल यह होता है कि सारा काव्य ही अस्पष्ट हो जाता है। एक तो 'प्रसाद' ने इस सारे काव्य मे प्रेम-सम्बन्ध करते समय प्रेमिका को 'पुलिग' से सबोधित किया है—

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये

आशा का फैल रहा है
यह सूना नीला अचल
फिर स्वर्णसृष्टि सी नीचे
उसमे करुणा हो चंचल

परन्तु जो कुछ वह कहता है, वह करुणा, जीवन, मेरे सुन्दर-तम जैसे अस्पष्ट रहस्य-व्यंजन शब्दों की पकड़ में नहीं आता।

जो हो, प्रसाद का 'आँसू' उनकी अत्यत महत्त्वपूर्ण रचना है। 'कामायिनी' के बाद की रचनाओं मे उसी का स्थान है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही। 'पल्लव' ( पंत ) और 'आँसू' ( प्रसाद ) दोनो १९२५ में प्रकाशित हुए और इन रचनाओं ने द्विवेदीयुग की रचनाओ को बहुत पीछे छोड़ दिया। एक नये युगारंभ की सूक्ष्म इन रचनाओं ने दी। 'छायावाद' काव्य के आदि प्रवर्तक यही दो ग्रंथ है। 'पल्लव' और 'आँसू' दोनों मे कल्पना-विलास है, स्थूल को छोड़ कर सूक्ष्म की ओर कवि बढ़ता है, जीवन के गहनतम तत्त्वो को लेकर वह उपस्थित हो सकता। पल्लव की 'परिवर्तन' कविता ने पंत के जीवन की जो तल-स्पर्श मीमांसा की है, उस कम गहरी प्रेम, सौन्दर्य और करुणा की मीमांसा 'आँसू' मे नहीं हुई है। एक नई मूर्त्तिमत्ता, एक नए कल्पना-विलास, एक नूतन स्वातंत्र्य दिशा की ओर इन रच-नाओं ने संकेत किया और इसने हिन्दी के काव्य को मङ्गल भावना से भर दिया। इसी वर्ष ( १९२५ ) प्रेमचंद ने 'रग-भूमि' ( ऐतिहासिक-सामयिक उपन्यास ) को उपस्थित किया और इसके द्वारा हिन्दी गद्य मे एक नई क्रांति की सूचना दी। महायुद्ध के दिनो मे देश की चिंताधारा विदेशो की ओर मुड़ गई थी, कवियो और लेखको के लिये पश्चिम के रोमांस काव्य और रूस के महान् उपन्यासों की ओर जाना अनिवार्य था। इस नवीन दृष्टि ने काव्य-क्षेत्र मे पन्त, प्रसाद, निराला और उपन्यास

क्षेत्र में प्रेमचंद को जन्म दिया। १६२१ के जनांदोलन ने कवियों की भावभूमि मुक्त कर दी और वे नए आसमान, नई जमीन देखने के लिए आतुर हो उठे। रवीन्द्र, शेली, कबीर, टाल्सटाय, रूसो जिसने भी जो दिया, उससे ग्रहण कर एक नई साहित्यिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। १६००—२१ के इतिवृत्तात्मक कलाहीन काव्य गद्य के समकक्ष 'आँसू' और 'पल्लव' की 'प्रतीयमान छाया' छवि से अधमुँदी, अधखुली प्रतिभा-मूर्ति ऐसी ही है जैसी मृत्यु की जड़ता के सामने जीवन का 'शतशत भावोच्छ्वसित' स्पंदन।

# ६

## "लहर"

'लहर' में जयशंकरप्रसाद की प्रौढ़तम प्रगीतियो और कुछ मुक्तछन्दों का संग्रह है। यह संग्रह कवि को प्रौढ़तम रूप में हमारे सामने रखता है। इस समय कवि 'कामायिनी' को समाप्त कर रहा था। इस संग्रह की कविताओं को भली भाँति समझ लेने पर हमें प्रसाद की सभी प्रवृत्तियाँ सुन्दर ढङ्ग से समझ मे आ जाती है।

'लहर' में २६ प्रगीति हैं। इन प्रगीतियों को हम छायावाद काव्य के प्रौढ़तम नमूने के रूप में सामने रख सकते है। स्वयं 'लहर' प्रतीक है। कवि मनुष्य-मन में उठने वाली मानसिक तरंगों के घात-प्रतिघात की बात कहता है। उसके मन में जीवन के सुख-दुःख को लेकर जो विराट् संघर्ष चल रहा है, उसकी प्रतिच्छाया यहाँ स्पष्ट है। इस मानस-लहरी का उत्थान-पतन कवि को आश्चर्य से भर देता है। वह कहता है—

शीतल कोमल चिर कम्पन-सी
दुर्ललित हठीले बचपन-सी
तू लौट कहाँ जाती है री—
यह खेल खेल ले ठहर ठहर

वह उसे याद दिलाता है कि पंकज-बन, (सुख स्मृतियों का नंदन) ही सब कुछ नही है। कहता है—

तू भूल न री पकज-बन मे
जीवन के इस सूनेपन मे

ओ प्यार-पुलक से भरी ढुलक
आ चूम पुलिन के विरस अधर

इस प्रकार हम देखते है कि इस आरम्भिक कविता से ही प्रसाद के काव्य का द्विविध रूप हमें मिल जाता है।

'लहर' में हम कवि को शुद्ध रहस्यवादी भूमि पर प्रतिष्ठित पाते है। जीव और ब्रह्म की लुका-छिपी को कवि अत्यंत स्पष्ट शब्दों में स्पष्ट करता है। ब्रह्म जीव के साथ आँख-मिचौनी खेलता है, परन्तु उषा की अरुणिमा के रूप मे बहने वाली उसके पदचाप की लाली से, उसकी हँसी से, रूप-रस-गध में हो रहे उसके खेलों से जीव उसे पहचान ही लेता है—अतः कवि कहता है—

देख न लूँ, इतनी ही तो इच्छा है, लो सिर झुका हुआ
कोमल किरन-उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ
फिर कह दोगे, पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो
किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हँसी दबाओ तो
सिहर-भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
वेला वीत चली है चचल बाहुलता से आ जकड़ो

तुम हो कौन और मै क्या हूँ
इसमें क्या है धरा, सुनो
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित
मेरे क्षितिज ! उदार बनो

वह इसी पर संतोष कर लेगा। उसका प्रियतम उसे अपना मुख नहीं भी दिखलाये, उसका शीतल स्पर्श उसे मिलता रहे। वह कहता है—

शशि सी वह सुन्दर रूप-विभा
चाहे न मुझे दिखलाना

उसकी निर्मल शीतल छाया
हिमकन को बिखरा जाना

परन्तु प्रियतम की निष्ठुर आँख-मिचौनी और उसकी आतुर अपलक प्रतीक्षा उसे पागल बना देती है। जीवन में ऐसें क्षण आते है कि भीतर की वेदना हाहाकर करती हुई बाहर निकलने लगती है—

धीरे से वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार

और कभी-कभी वह चिल्ला पड़ता है—

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को
मेरी आँखो मे आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को
सूने नभ में आग जला कर
यह सुवर्ण-सा हृदय गला कर
जीवन संध्या को नहला कर
रिक्त जलधि करने वाले को

परन्तु अंत मे उसके हृदय की प्रतिध्वनि ही उसे रहस्य बतातो है। यह 'प्यार' तो खोजने की वस्तु नही है—

पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन-कन को गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार

यही नहीं कवि अनुभव करता है कि इस विशद विश्व में

करुणा का ही साम्राज्य है। वही सत्य है शेष मिथ्या है। शेष प्रताडना है। प्रियतम ने उसे ठुकरा दिया है। परन्तु इस ठुकराने से ही वह क्या अप्रिय हो गया। इससे तो वह और प्रिय बन गया। कवि कहता है—

निधरक तूने ठुकराया तब
मेरी टूटी हुई मृदु प्याली को
उसके सूखे अधर माँगते
तेरे चरणों की लाली को
जीवन-रस के बचे हुए कन
बिखरे अंबर में आँसू बन
वही दे रहा था सावनघन
वसुधा की हरियाली को

सच तो यह है, करुणा ही सत्य है। दुःख मे भी प्रियतम का निवास है। उसी मे उसे पाना होगा। जीवन-मरण, सुख-दुख की रहस्यमयी क्रीड़ा को जब मनुष्य समझ ही नहीं पाता तो वह क्या करे ? तब क्रोध क्यों ? क्षोभ क्यों ? निराशा क्यों ? आसक्ति क्यों ?

तब क्यों रे फिर यह सब क्यों
यह रोष भरी लाली क्यों
गिरने दे नयनों से उज्ज्वल
आँसू के कन मनहर
वसुधा के अंचल पर

परन्तु करुणा और वेदना के इन गानों से, इस जीवनदर्शन से आत्मा की पुकार दबती तो नहीं, उसे भुलाया तो नहीं जा सकता। प्रर्थना का अधिकार तो जीवन को रहेगा ही। अतः 'लहर' मे प्रार्थना के कई सुंदर गीत हैं, जैसे—

तू अपलक सोई है, आली
　　आँखो मे भरे विहाग री

कहीं कवि प्रभात को "भैरवी" बनाता है, कही थकी हुई रात आलस की अँगड़ाई ले रही है या अपने रतनारे नेत्रो का सागर के उद्वेलित अंचल से पोछ रही है—

आँखों से अलख जगाने को
　　यह आज भैरवी आई है
ऊषा-सी आँखों मे कितनी
　　मादकता-भरी ललाई है
कहता दिगन्त से मलय-पवन
　　प्राची की लाज-भरी चितवन
है रात घूम आई मधुबन
　　यह आलस की अँगड़ाई है
लहरों में यह क्रीड़ा चचल
　　सागर का उद्वेलित अंचल
है पोंछ रहा आँखे छलछल
　　किसने यह चोट लगाई है

कही कवि अत्यंत मार्मिक हो रात के हृदय के श्वास-प्रश्वास को देखता है। 'प्रसाद' विलास, ऐश्वर्य और मादकता के कवि है। उन्होने अतीत के टूटे हुए स्वप्न और विलासमय रंगो से रँगी सांय-प्रात: का विशद चित्रण किया है। स्वयं अपने मे निमज्जित हो, कालिदास और रवीन्द्र का प्रेम-विलास और रहस्य की मादक कल्पना को उन्होने अपनाया है और उसे सोने के पत्रो मे सॅजो कर रखा है। कला की ये विलास से सॅवारी रेखाएँ जनकाव्य की श्रेणी की वस्तु नही, परन्तु एक विशेष वर्ग के एक विशेष श्रेणी के काव्य का इतना सुन्दर रूप अन्यत्र नहीं मिलेगा। कवि कहता है—

कोमल कुसुमों की मधुर रात
शशि-शतदल का वह सुख विकास
जिसमे निर्मल हो रहा हास
उसकी सांसों का मलय वात
कोमल कुसुमों की मधुर रात
वह लाज भरी कलियां अनत
परिमल घूंघट ढंक रहा दत
कँप कँप चुप-चुप कर रहीं बात
कोमल कुसुमों की मधुर रात
नक्षत्र-कुमुद की अलस-माल
वह शिथिल हँसी का सजल जाल
जिसमें खिल खुलते किरन-पात
कोमल कुसुमों की मधुर रात
कितने लघुलघु कुड्मल अधीर
गिरते वन शिशिर सुगध नीर
हो रहा विश्व सुख पुलक गात

प्रकृति का सौन्दर्य जहाँ एक ओर विलास और ऐश्वर्य की भूमिका है, वहीं उससे अतीत की वीणा भी झंकृत हो उठती। कवि पाता है, उसका सोने का संसार खो गया। कवि पाता है, प्रकृति का वैभव उसके लिये सुख का वरदान नहीं लाता। वह उदास हो जाता है। जब प्रभात में—

अंतरिक्ष में अभी सो रही है ऊषा मधु-बाला
अरे खुली भी नहीं अभी तो प्राची की मधुशाला
सोता तारक-किरन-पुलक-रोमावलि मलयज वात
लेते अँगड़ाई नीड़ों में अलस विहग मृदु गात

तभी कवि भिखारी के रूप में प्रकृति के वैभव से भिक्षा प्राप्त करने चल पड़ता है। कहता है—"कुछ मुझको भी दे देना"—

"कनकन बिखरा विभव दान कर अपना यश ले लेना',
दु:ख-सुख के डग भरता हुआ यह अकिंचन भिखारी बढ़ता जाता है। इसी तरह—

मधुर माधवी संध्या मे जब
रागारुण रवि होता अस्त
विरल मृदुल दलवाली डालों से
उलझा समीर जब व्यस्त
प्यार भरे श्यामल अंबर मे जब
कोकिल की कूक अधीर
नृत्य शिथिल बिछली पड़ती है
वहन कर रहा उसे समीर
तब क्यो तू अपनी आँखों मे
जल भर कर उदास होता

कहीं कवि उन करुण व्यक्तियो के प्रति सहानुभूति प्रगट करता है जो अपने अभावो को लिए हुए निद्रा की गोद में शांत सोये है—

अपलक जगती को एक रात
सब सोये हों इस भूतल मे
अपनी निरीहता संबल मे
चलती हो कोई भी न बात

पथ सोये हों हरियाली मे
हों सुमन सो रहे डाली में
हो अलस उनींदी नखत-पाँत

नीरव प्रशात का मौन बना
चुपके किसलय से बिछल छना
थकता हो पंथी मलय-वात

वक्षस्थल मे जो छिपे हुए
सोते हो हृदय अभाव लिये
उनके स्वप्नों का हो न प्रात

इस संग्रह की एक-दो कविताएँ 'प्रसाद' के व्यक्तित्व और उनकी कला पर विशेष प्रकाश डालती है। 'हंस' के आत्मकथांक (१९३३ ई०) के लिए प्रेमचंद ने प्रसाद को निमन्त्रण दिया था और यह कविता मुखपृष्ठ पर छपी थी। इसमें कवि कहता है—

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की
मिला कहाँ वह सुख जिसका मै स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिंगन मे आते आते मुसक्या कर जो भाग गया
जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया मे
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में

उसकी स्मृति पाथेय बनी है
थकी पथिक की पन्था की
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यो
मेरी कथा की ?

इससे कवि का रोमांटिक (स्वच्छन्द) दृष्टिकोण और उसकी करुणा के मूल स्रोत पर प्रकाश पड़ता है।

'लहर' मे प्रसाद की कुछ कथात्मक कविताएँ भी संग्रहीत है—अशोक की चिता, शेरसिंह का आत्मसमर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि और प्रलय की छाया। इन सब कविताओं का मूल स्रोत ऐतिहासिक है। इतिहास की ओर कवि की दृष्टि का प्रमाण उसके प्रसिद्ध नाटक हैं और इसी ऐतिहासिक प्रवृत्ति से ये कविताएँ अनुप्राणित हुई हैं। इन कविताओं की विशेपता इतनी

उनके विषय की नहीं है, जितनी मानसिक और कलात्मक चित्रण की। इन सब कविताओं का, विशेषकर मुक्तछन्द में लिखी कविताओं का आधुनिक हिंदी काव्य मे विशेष स्थान रहेगा। इनमें हमें प्रसाद की उस वस्तु-चित्रण-कला के दर्शन होते हैं जो उनके उपन्यासों का प्राण है। (पेशोला की प्रतिध्वनि) मे पेशोला का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

पेशोला की ऊर्मियाँ हैं शात, घनी छाया मे
तरुतट हैं चित्रित तरल चित्रसारी में
झोंपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के
दग्ध अवसाद से
धूसर जलदखंड भटक पड़े हैं
जैसे विजन अनन्त मे
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलक-सी
दुन्दुभि-मृदग-तूर्य शात, स्तब्ध, मौन हैं

यौवनागम से नारी के भीतर सौन्दर्य और स्वप्नों का जो ससार जाग उठता है उसका वर्णन कवि ने 'प्रलय की छाया' में इस प्रकार किया है —

पागल हुई मैं अपनी ही मृदु गंध से
कस्तूरी-मृग जैसी
पश्चिम जलधि मे
मेरी लहरीले नीले अलकावली समान
लहरे उठती थीं मानों चूमने को मुझको
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर
नृत्यशीला शैशव की स्फूर्तियाँ

दौड़ कर दूर जा खड़ी हो हँसने लगीं
मेरे तो,
चरण हुए थे विजड़ित मधु-भार से
हँसती अनंग-बालिकायें अतरिक्ष में
मेरी इस क्रीड़ा के मधु-अभिषेक में
नत शिर देख मुझे
कमनीयता थी जो समस्त गुजरात की
हुई एकत्र इस मेरी अंग लतिका मे
पलकें मदिर भार से झुकी पड़तीं
नदन की शत शत दिव्य कुसुम कुन्तला
अप्सराएँ मानों वे सुगन्ध की पुतलियाँ
आ-आकर चूम रहीं अरुण अधर मेरा
जिसमें स्वयं ही मुस्कान खिल पड़ती
नूपुरों की झनकार घुली मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से

इस प्रकार के मानसिक परिवर्तन के चित्रण छायावाद-काव्य के अतिरिक्त अन्य स्थान पर मिलना असंभव हैं। प्रकृति और मनुष्य के घात-प्रतिघात के चित्रण के लिये यह कविता और भी सुन्दर है—

एक दिन, सध्या थी;
मलिन उदास मेरे हृदय-पटल-सा
लाल पीला होता था दिगत निज क्षोभ से
यमुना प्रशात मंद मद निज धारा में
करुण विषादमयी
बहती थी धरा के तरल अवसाद-सी

बैठी हुई कालिमा की चित्रपटी देखती
सहसा मैं चौंक उठी द्रुत पद शब्द से

वास्तव मे प्रसाद की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और हमें दुःख होता है कि उन्होंने उपन्यास और कथात्मक काव्य के क्षेत्र में एक-दो ही वस्तुएँ दे पाईं। यदि वह कुछ पहले से इधर आये होते तो हिंदी के काव्य में एक नई प्रवृत्ति को स्थायित्व प्राप्त हो गया होता।

# ७

# 'कामायिनी' [क]

'कामायिनी' प्रसाद की प्रौढ़तम रचना है और उसे छायावाद काव्य के अन्यतम उदाहरण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। छायावाद की सारी दुर्बलता और उसकी सारी शक्ति के हमें इस कथा-काव्य में मिल जाते है। जिस प्रकार सूरसागर कृष्ण-काव्य का, रामचरितमानस रामकाव्य का, विहारी सतसई शृङ्गार काव्य का और प्रियप्रवास द्विवेदी युग के काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी प्रकार जयशंकर प्रसाद की कामायिनी को आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण धारा 'छायावाद' का प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है। इस एक ग्रंथ को अच्छी तरह समझ लेने पर हम स्वच्छंदतावाद (छायावाद) की सारी प्रवृत्तियों से परिचित हो जाते है।

चित्राधार (१९०९), काननकुसुम (१९१२), आँसू (१९२५), झरना (१९२७) और लहर (१९३२)—प्रसाद के अन्य पाँच काव्य-ग्रंथ है। 'कामायिनी' का समय काफी लबा है। ग्रंथ १९३५ में प्रकाशित हुआ, परन्तु १९२०-२२ के आस-पास से प्रसाद इस रचना मे लगे हुए थे। 'त्यागभूमि' (१९२८) मे 'नारी और लज्जा' शीर्षक से इस काव्य का एक उत्कृष्ट अंश प्रकाशित हुआ और तब से भिन्न-भिन्न मासिको में इसके अंश बराबर प्रकाशित होते रहे। इस प्रकार प्रसाद का सारा प्रौढ़ काव्य (आँसू, झरना, लहर) इस ग्रंथ के समानान्तर चलता है।

द्विवेदी-युग (१६००-२१) के काव्य की सर्वोत्कृष्ट रचना 'प्रियप्रवास' है। इसकी कथा पौराणिक है, राधाकृष्ण का प्रेम और विरह। इसे कवि ने अत्यन्त संयमित ढंग से प्रकाशित किया है। कथा में थोड़ी बहुत नवीनता का आग्रह है भी, परन्तु अभिव्यक्ति के प्रकार वही पुराने हैं, सर्ग-विभाग, संस्कृतात्मक छंद, काव्य-रूढ़ियों और काव्य प्रसिद्धियों का प्रयोग, अभिधात्मक वर्णन शैली। वह मर्यादा-प्रधान काव्य (Classic Poetry) और संयमात्मक कला का सुन्दर उदाहरण है और इस प्रकार की प्राचीन रचनाओं में रामचरितमानस (१५७४ ई०) के समकक्ष आता है। प्राचीन स्वच्छन्दतावादी काव्य के नमूने सूरसागर (१५२५) और पद्मावत है।

द्विवेदी-युग की जड़ता, पुरोगामिता और इतिवृत्तात्मकता के विरोध में छायावाद या स्वच्छंदतावाद का जन्म हुआ। चित्राधार की रचनाएँ प्रारंभिक स्वच्छन्द-काव्य के रूप में उपस्थित की जा सकती हैं। इस धारा का अन्य सुस्पष्ट प्रकाशन 'आँसू', 'वीणा' और 'अनामिका' में हुआ, परन्तु यदि हम सरस्वती (१६०० में स्थापित) की द्विवेदी-युग की फाइलों का अध्ययन करें तो हमें शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से ही इसके बिखरे चिह्न मिलने लगते हैं। १६११ में गीतांजली (रवि बाबू) के प्रकाशन ने इस नवीनतम प्रवृत्ति को बल दिया और छायावाद (स्वच्छन्दतावाद) की सर्वप्रधान भंगिमा रहस्यवाद का जन्म हुआ। राय कृष्णदास ने 'प्रसाद' के संस्मरण लिखे हैं। इनसे पता चलता है कि रवि बाबू की गीतांजलि से प्रभावित होकर प्रसाद ने भी गद्यगीत लिखे थे, परन्तु राय कृष्णदासजी के गद्य-गीतों को सुनने के बाद उनके रास्ते से हटने की भावना के कारण उन्होंने बहुत से गद्यगीत नष्ट कर दिये और कुछ को कविता का रूप दे दिया। 'चित्राधार' की रहस्यात्मक

कविताओं की यही कहानी है। वह राय कृष्णदास की 'साधना' की गद्यगीतियों की श्रेणी का रचनाएँ हैं। रवीन्द्र बाबू के प्रभाव-क्षेत्र से निकल कर नये कवियों ने भाषा, भाव और अभिव्यक्ति के क्षेत्रों मे धीरे-धीरे नया मार्ग ढूँढ निकाला।

रीतिकाल मे हिंदी कविता संस्कृत-काव्य-नियमो, रस, अलंकार, ध्वनि, व्यंजनादि की रूढ़ियो के जटिल जाल में बँध गई। १६०० ई० से लेकर १८५७ ई० तक रस और अलंकारों के उदाहरण के रूप मे बँधी हुई पिष्टप्रेषित कविता की बाढ़ रही। प्रेम और वासना, संयोग और वियोग, षटऋतु वर्णन, बारहमासा—इस कविता की इतनी ही सरगम थी। जीवन के तीन सप्तक तो क्या, एक सप्तक के भी सारे स्वर इस कविता मे नहीं बोलते। घनानन्द, सेनापति, बोधा, हरिश्चंद्र-प्रभृति रस-मर्मज्ञ प्राकृत कवियो ने रीति कविता की जडता और मशीन जैसी निष्प्राणता का विरोध किया और हृदय को स्पर्श करने वाली भाषा मे हृदय से सहज फूट पड़ने वाले भावो का प्रकाशन किया। यह सब हुआ जैसे मरुभूमि मे प्राकृतिक स्रोत फूट पड़े हो और उन्हे घेर कर लता-निकुंज, वृक्षादि अपनी मनोरम छटा दिखा रहे हो, परन्तु इन छोटे-मोटे उर्वर क्षेत्रो से मरुस्थल की समरसता, जड़ता और शून्यता को कठोरता कम नहीं हो सकती थी। गदर (१८५७ ई०) के बाद हिंदी भारती ने सामयिक विषयो को अपनाया और श्रीधर पाठक ने प्रकृति के स्वतंत्र, स्वच्छंद और सहज रूप को काव्य का विषय बनाया। रीतिकाल को विषय और अभिव्यंजना को जड़ता को १६वीं शताब्दी के अंतिम दशको की सामयिक (राजनीतिक, सामाजिक) और प्रकृति-संबंधी कविता ने खुला चैलेंज दिया। सरस्वती के प्रकाशन के साथ भाषा भी ब्रजभाषा-से बदल कर खड़ी बोली हो गई। अगले २५ वर्षों का इतिहास

नये-नये विषयो, नये-नये छदो और नई-नई अभिव्यक्ति-शैलियो के प्रयोग का इतिहास है।

कविता के वाह्य रूपो मे परिवर्तन श्रीधर पाठक के (गीतो) द्वारा हुआ। गीतो के माध्यम से एक स्वच्छंद, अपने मे पूर्ण और प्राकृतिक भावधारा का प्रकाशन आरंभ हुआ। कविताओं में, गीतात्मकता की वृद्धि हुई। गीतात्मक काव्य की अनेक शैलियो का जन्म हुआ। छायावाद काव्य में संगीत और कला के सर्वोत्कृष्ट दर्शन मिलते है। विद्यापति और सूरदास की परंपरा में आगे बढ़ कर नया कवि भाव, लय, छन्द का आशातीत संगम उपस्थित करने में सफल हुआ।

परन्तु इस वाह्य रूप का अभिव्यंजन प्रणालियों पर प्रभाव पड़ा और बंगला, अंग्रेजी और लोकगीतो से प्रभावित अभिव्यंजना की नई शैलियो का जन्म हुआ। सच तो यह है, हिन्दी-काव्य के किसी भी अन्य युग मे इतना आमूल युगांतर कभी नही हुआ है। कविता के रूप-रग, वाह्यलंकार अव्ययो के गठन तो बदले ही, उसकी आत्मा भी नये रंगो मे रँग गई। सगीत, लय, छंद अलंकार, भापा, शैली—ये वाह्यांग इतने नवीन हो गये कि पुरानी पीढ़ी के कवियो और पाठको के लिये एकदम अग्राह्य। जो बंगला-अंग्रेजी से परिचित नही थे उन्होने इसे 'कंगारु' और 'रबड़' छदो का काव्य कहा। जो इन भाषाओं के साहित्य से परिचित थे उन्होने शिकायत की कि नवीन काव्य में वास्तव मे नवीन कुछ भी नहीं है, सब कुछ बगला या अंग्रेजी से लिया गया है। जहाँ तक वाह्यांगो का सबंध था बात बहुत कुछ ऐसी ही थी। हिंदी जनता कवित्त-घनाक्षरी-सवैया, दोहा-सोरठा, गजल, संस्कृत वृत्तो, उर्दू बहरो, जन-छदो (कव्वाली, पद, चौबोला आदि) से परिचित थी। तीन चरणो या पाँच चरणो या असम चरणों के अनिश्चित-से छन्द उसके लिये 'बुझौवल'

से कम नहीं थे। इनकी भाषा तो हिंदी थी, परन्तु शब्दों का प्रयोग अटपटा था। कवियों ने साधारण, जन-प्रचलित शब्दावली का व्यवहार करना छोड़ दिया था और वे संस्कृत साहित्य से प्राप्त शब्दों का कुछ खुला, कुछ मुँदा प्रयोग करने लगे। इन शब्दों की आत्मा से वे पूर्णतः परिचित न थे, कितने ही नये संस्कृत शब्द बंगला के माध्यम से या अंग्रेजी शब्दों के आप्टे के सहारे अनुवाद किये रूप में हिंदी काव्य में पहली बार आये। वास्तव में छायावादी कवियों ने काव्यगत भाषा के क्षेत्र को इतना सीमित कर दिया था कि सारे काव्य में कुछ सौ शब्दों का ही हेर-फेर मिलेगा। इस सीमित शब्द-कोष में भी अधिकांश सामग्री एकान्तः नवीन, अतः हिंदी पाठकों के लिये दुर्बोध थी। इस प्रकार नये छन्दों और नई भाषा के मेल ने हिंदी-काव्य रसिकों के सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित कर दी थी। नये छंदों के साथ संगीतात्मक की वृद्धि हुई, जो द्विवेदी-युग की बँधी-सधी नीरस निसंगीत भाषा के सामने चमत्कार-सी लगती थी, नई-नई बलायें सामने आईं। शैली में भी अपूर्व परिवर्तन हो चला। जहाँ द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक, गद्य-प्रधान, जड़ता-जड़ित भाषा शैली कविता का गला ही घोट देती थी, वहाँ 'छायावाद' काव्य की व्यंजना-प्रधान, प्रतीकात्मक, नवीन शब्दों, शब्द-समूहों और संकेतों से भरी शैली पाठक के सामने एक ऐसा सरस, अतीन्द्रिय जगत् उपस्थित कर देती है जिससे वह अभी अर्द्ध-परिचित ही हो सकता था। इसका फल यह हुआ, जहाँ नवीनता का आभास मिला, वहाँ सहज काव्य रस के संयोजन में बाधा पड़ी। 'रस' के लिए सहृदय ही नहीं चाहिए, उस सहृदय को काव्य-परंपरा और काव्य-रूढ़ि का पूर्व परिचय भी होना चाहिये। नई कविता परंपरा से एकदम दूर पड़ती थी, अतः रसबोध में बाधा पड़ी और नया काव्य केवल "वैचित्र्यवाद" का खिलौना समझा जाने लगा।

वास्तव में आरंभ के छायावाद काव्य में बहुत कुछ अटपटा पन है, परन्तु उसमें नये जीवन और नये सौन्दर्य की झाँकी भी मिलती है। 'छायावाद' के इस आरंभ के काव्य में मुकुटधर पांडेय, पंत और प्रसाद की कुछ रचनाएँ आती हैं। पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में पांडेयजी के काव्य के कुछ नमूने दिये है—

हुआ प्रकाश तमोमयी मग मे
मिला मुझे तू तत्क्षण जग मे
दंपति के मधुमय विलास मे
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास मे
वन्य कुसुम के शुचि सुवास मे
था तव क्रीड़ा स्थान (१९१७)

मेरे जीवन की लघुतरणी
आँखों के पानी में तर जा!
मेरे उर का छिपा खज़ाना
अहंकार का भाव पुराना
बना आज तू मुझे दिवाना
तप्त श्वेत बूँदों में तर जा (१९१७)

जब संध्या को हट जावेगी भीड़ महान्
तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान
शून्य कक्ष के अथवा कोने मे ही एक
बैठ तुम्हारा करूँ वहाँ नीरव अभिषेक (१९२०)

पंत की वीणा और प्रसाद के चित्राधार, काननकुसुम और आँसू के छायावाद काव्य की प्रारंभिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला जा सकता है। सच तो यह है कि श्रीधर पाठक ने प्रकृति, देश और मनुष्य-सम्बन्धी को नवीन स्नेहात्मक ढंग से

देखने की लीक स्थापित की। रामनरेश त्रिपाठी और रामचंद्र शुक्ल जैसे अन्य क्षेत्रों में विशेषकृतो कवियों ने द्विवेदी-युग में इसे पोषित किया और शताब्दी के दूसर दशक के आरंभ से इस नई धारा मे इतना पानी आ गया कि दोनो कूल प्लावित हो उठे। बाढ़ के छंदहीन बंधनहीन जल-प्रवाह की तरह इसमे सयम की कमी थी—मात्रिक, वर्णात्मक, तुक, अतुक, स्वच्छद-युक्त, हलके, भारी, गेय-अगेय सैकड़ो छंदो ने न जाने कहाँ से निकल कर मासिक पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठो पर उछल-कूद करना शुरू किया। इस उच्छृंखलता से आलोचक वर्ग त्रस्त हो उठा। रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक ने इसे "स्वच्छन्दतावाद" कहा। वास्तव मे यह नई जागृति की उथल-पुथल थी।

इस नई जागरण की बेरोक उछल-कूद के बाद संयम आने लगा और १६१३—१६३० तक के काव्य को हम छायावाद के शैशव (adolescence) का काव्य कह सकते है। १६३०—३८ तक छायावाद-काव्य प्रोढ़ता को पहुँच चुका था और शीघ्र ही इसे नवीन सामाजिक भूमि पर उगते हुए नए काव्य से संघर्ष लेना पड़ा। "कामायिनी" की भूमिका के लिए हमे १६१३—३० तक के काव्य (विशेषतः इस काल के प्रसाद-काव्य) से परिचित होना पड़ेगा।

पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे छायावाद को नई धारा की मुख्य प्रवृत्तियो का विश्लेषण इस प्रकार किया है—

(१) रहस्य भावना (इसके मुख्य कवि ने निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा)

(२) अभिव्यञ्जन-पद्धति की विशेषता की ओर एकांत लक्ष्य। प्रतीकवाद और चित्रभाषा-वाद (छायावाद के सभी कवि इन रोगो से ग्रस्त हैं)

(३) भावानुभूति का स्वरूप भी कल्पित होने लगा। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है, उसी प्रकार भावानुभूति भी कल्पित होने लगी। ( महादेवी, प्रसाद पर रामकुमार मे यह विशेषता विशेष रूप से लक्षित है )।

(४) गीतात्मकता। उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है। जहाँ यह अन्विति होती है, वहाँ समूची रचना अन्योक्ति पद्धति और की जाती है (निराला, पंत, महादेवी, प्रसाद मे विशेष लक्ष्य)

(५) साम्यभावना का प्रसार। शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ संबन्ध की कल्पना और इसलिये हृदयतत्त्व (सहानुभूति) का विस्तार (देखिये निराला )।

(६) प्रकृति और उसके अनत रूपो और व्यापारो के प्रति रहस्याश्चर्यमयी दृष्टि और इन सब पर स्त्री-सौन्दर्य और यौनभावनाओ का आरोप (सब कवि, विशेषकर पंत)।

(७) मानसिक सूक्ष्म विकारो और मनोभावो को पकड़ने की चेष्टा (प्रसाद की 'प्रलय की छाया' और निराला का तुलसीदास' काव्य इसी श्रेणी की वस्तुएँ है )।

(८) अन्य विषय रहे—वासनात्मक प्रणयोद्‌गार, वेदना-विवृत्ति, सौन्दर्य-संघटन, मधुचर्या, अतृप्ति, व्यंजना, जीवन का अवसाद, विपाद और नैराश्य।

पण्डित रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद काव्य के दो अर्थ लिए हैं। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहॉ उसका संबन्ध काव्यवस्तु मे होता है अर्थात् जहॉ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा मे प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। दूसरा अर्थ व्यापक है—काव्यशैली या पद्धति विशेषकर एक निश्चित प्रयोग। पहले वर्ग का अंश रहस्यवाद को जन्म देता है जो अंग्रेजी के 'Misticism' का प्रतीक है

और दूसरा प्रतीकवाद को जिसे अंग्रेजी में 'Symbolism' कहते हैं। इस प्रकार उन्होने छायावाद की मुख्यात्मा को रहस्यात्मक प्रेम-विरह का लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली मे प्रकाशन मात्र समझा है। ( देखिये, 'इतिहास' : नया संस्करण पृ० ८०५—८१७ )।

अन्य आलोचक शुक्लजी से पूर्णतया सहमत नहीं है। पंडित नंददुलारे वाजपेयी ने 'छायावाद' के और भी व्यापक, गहरे अर्थ किये है। उनका कहना है—"छायावाद को हम पण्डित रामचन्द्र शुक्ल जी के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमे एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टत: पृथक अस्तित्व और गहराई है, ('जयङ्कर प्रसाद' पृ० १८ )। जान पड़ता है, उनके इस कथन का आधार 'कामायिनी' है। "इस नवीन प्रवर्तन के मूल में एक स्वातंत्र्य-लालसा, शक्ति की अभिज्ञता, और सांस्कृतिक द्वन्द्व का एक अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है। ये सभी एक कल्पना-विशिष्ट दर्शन के अंग बने हुए है जिसमे बड़ी व्यापक सहानुभूतियाँ है। इस नवीन दर्शन में कल्पना, भावना और कर्म-चेतना की सम्मिलित झाँकी है।" ( वही, पृ० १७-१८)। श्री जयशंकर प्रसाद ने भी अपने एक निबंध मे 'छायावाद' की व्याख्या की है और ऐतिहासिक रूप मे उसे हरिश्चंद्र द्वारा स्थापित यथार्थवाद का ही अधिक व्यापक और सूक्ष्म रूप माना है। परन्तु उन्होने सांस्कृतिक भूमि पर चाहे रहस्यवाद को दु:खवाद पर ही क्यों न स्थापित किया हो, वह उसे मूलत: अभिव्यंजना की एक शैली मानते है और प्राचीन व्यंग-शैलीकारो और लक्षणा-व्यंजना पर बल देनेवाले आचार्यों से उसका संबन्ध जोड़ते है। प्रसाद के काव्य, विशेषतय:

'कामायिनी' को समझने के लिए उनका यह दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। उनके लिए छायावाद के दो पक्ष है :

(१) सौन्दर्य-बोध और तज्जन्य दुःखवाद या करुणावाद,

(२) नवीन लाक्षणिक या व्यंगात्मक शैली।

इन दोनों आधारों को सामने रख कर प्रसाद को भाषा और छंद के नये प्रयोग करने पड़े। छंदो मे नवीनता के आविष्कार के सम्बन्ध मे उनका आग्रह अधिक नहीं था। निराला और पंत इस ओर अधिक उन्मुख हुए। प्रसाद के करुणा और विलासात्मक सौन्दर्य के चित्रण और उसके नाश पर आत्मा के गहरे दुःख को ही व्यक्त किया।

[ २ ]

जयशकर प्रसाद की प्रारंभिक रचनाएँ हैं चित्राधार, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय, प्रेमपथिक। इन रचनाओ मे छायावाद से पहले के काव्य की मनोभूमि के दर्शन होते है। वास्तव मे प्रेमपथिक (१९१३) को प्रसाद के नए काव्य का पहला चरण समझना चाहिये। १९१८ मे प्रसाद की २४ कविताओ का संग्रह 'झरना' नाम से सामने आया। इसके कुछ बाद 'आँसू' के दर्शन हुए। इसमें कवि ने भाषा, भाव, व्यंजना की एक नई भूमि उपस्थित की थी, जैसे—

अवकाश असीम सुखों से
आकाश तरंग बनाता
हँसता-सा छाया - पथ में
नक्षत्र - समाज दिखाता
नीचे विपुला धरणी है
दुखभार वहन-सी करती,

अपने खारे आँसू से
करुणा-सागर को भरती

(यहाँ कवि ने प्रकृति और मानव के चिरविरोध को स्पष्ट किया है। जब आकाश के अनन्त शून्य में इन्द्रधनुषी छायाओं के सुखचित्र चलते रहते हैं, जब तारों का समाज हँसता दिखलाई पड़ता है, तब भी यह हमारी पृथ्वी दुःख के बोझ को ढोती है। उसके आँसू करुणा-सागर को निरंतर भरते रहते हैं। प्रेमी की कठोर विमुखता से टूटे हुए हृदय को प्रकृति और मानव का यह चिरविरोध अत्यंत कटु लगता है)। इन पंक्तियों में जगज्जीवन के दुःख और हाहाकार के ऊपर सुखों की अनंत तरंगों को प्रवाहित करने वाली करुणामयी असीम सत्ता की ओर इंगित किया गया है। कवि की प्रार्थना है—

चिरदग्ध दुखी यह वसुधा
आलोक माँगती तब भी,
द्रुम-तुहिन बरस दो कन-कन,
यह पगली सोचे अब भी

परन्तु कवि की वेदना का आधार क्या है, यह समझ में नहीं आता। व्यापक रूप से जगती के दुःख (रोग, शोक, जरा, मरण) इस वेदना का आधार हो सकते हैं, एक असीम सत्ता की मिलनेच्छा इसके पीछे हो सकती है, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की अनेक बाधाएँ, मर्यादाएँ कवि को किसी अज्ञात करुणा-स्रोत और सांत्वना-भूमि की ओर इशारा कर सकती हैं, परन्तु स्वयं कवि ने इन बाधाओं-मर्यादाओं को स्पष्ट नहीं किया है। उपयुक्त वीथिका के न होने के कारण हमारे पाठक इस रहस्यमय वेदनावाद और करुणावाद को समझ नहीं सके और उन्होंने उसकी हँसी उड़ाई अथवा उसे अपार्थिक जीवों की चुहल मात्र माना।

के स्वर मनु के हृदय मे बोलने लगे (काम, सर्ग ४)। जीवन के अनेक उपकरण इकट्ठे होने लगे। काम-बाला श्रद्धा के प्रति उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया (वासना, सर्ग ५) मनु यज्ञ और कर्म में लग गये। जल-विप्लव से बचे हुए असुर पुरोहित किलात और आकुलि यज्ञ के लिये प्रस्तुत होते है। मनु पशुयज्ञ करते है। परन्तु श्रद्धा इस पशुवध से कुण्ठित हो जाती है। परन्तु श्रद्धा को मनते देर नही लगती। मनु जीवन में एक नये सुख का अनुभव करते है (कर्म, सर्ग ७)। इस नारी-विजय के बाद मनु का जीवन बदल जाता है। उनमे उच्छृङ्खल कर्मठता जाग उठती है। उधर श्रद्धा आसन्न प्रसव की चाह मे अधीर है। एक सुन्दर लता-कुञ्ज बनाती है। मनु नही चाहता कि श्रद्धा का प्रेम इस तरह बॅट जाय। वह स्वच्छंद बना रहेगा। उसमे ईर्ष्या का उदय होता है और वह श्रद्धा को छोड़ कर चला जाता है (ईर्ष्या, सर्ग ८)। हृदय मे तर्क-वितर्क का माया-जाल लिये अंत· संघर्ष मे तपते हुए मनु सरस्वती के किनारे घूमते हैं। वही उन्हे सारस्वत प्रदेश की अधिष्ठात्री देवी इड़ा का अकस्मात् परिचय होता है। सारस्वत प्रदेश उजड़ चुका है—इड़ा मनु का स्वागत करती है और शासन-सूत्र उसके हाथ मे दे देती है (इड़ा, सर्ग ९)।

उधर श्रद्धा प्रतीक्षा मे है। उसकी आकुल विरह-वेदना का अत्यंत स्पष्ट चित्र उपस्थित किया गया है। इस सारे दुखी वातावरण मे उसका एकमात्र सहारा है, उसका बालक मानव (मनुपुत्र) जो पिता का मुख नहीं देख पाया है। श्रद्धा (कामायिनी) स्वप्न देखती है—मनु किसी दूर प्रदेश मे किसी सुकुमारी (इड़ा) के सयोग से एक नई देवसृष्टि की रचना करते है, परन्तु प्रजा असतुष्ट होकर विरोध पर तुल जाती है (स्वप्न, सर्ग १०)। वास्तव में श्रद्धा का स्वप्न सत्य का आभास-मात्र है। सारस्वत

प्रदेश में प्रजापच्ची किरात और आकुलि (असुर) और राजपच्ची मनु (देव) मे भीषण युद्ध हुआ जिसमे मनु आहत होकर गिर पड़े (सघर्ष, सर्ग ११)। युद्ध के बाद सारस्वत प्रदेश जैसे उजड़ गया और इड़ा और मनु को भीषण पश्चात्ताप ने घेर लिया। इड़ा तर्क-वितर्क करती बैठी थी कि श्रद्धा की पुकार कानो में आई जो 'मानव' का हाथ पकड़े मनु को खोजती हुई आ पहुँची थी। वेदी-ज्वाला के प्रकाश मे घायल मनु को देखकर श्रद्धा का हृदय उमड़ पड़ा। मनु ने आँखें खोली। बिछुड़े मिले। श्रद्धा के स्नेहो-पचार ने मनु की आंधी को शांत किया, परन्तु प्रातःकाल सबने देखा, मनु नही है। शांति की खोज मे वे श्रद्धा, इड़ा और मानव को छोड़ कर कही दूर चले गये (निर्वेद, सर्ग १२)। सारस्वत प्रदेश को त्याग इड़ा, मानव और श्रद्धा मनु की खोज मे निकले और मंदाकिनी के किनारे एक पर्वत-प्रदेश मे तप करते हुए मनु मिल गये। श्रद्धा मनु को ज्ञान, कर्म और भाव-लोक (त्रिपुर) का दर्शन कराती है और दोनो प्राणी इसी संधिभूमि में आनन्द की साधना करते हैं (रहस्य, १३)। इड़ा और मानव इन संसार-त्यागी महान् आत्माओ से मिलने आते हैं। मनु मानव को उपदेश देते है। प्रकृति के मादन दृश्य के साथ पटाक्षेप (आनन्द, १४)

स्पष्ट है, केवल कथा-वस्तु के नाम पर विशेष मौलिकता नहीं है। जैसा भूमिका मे कहा गया है, कथा पौराणिक सूत्रो से आगे बढ़ती है। "श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में चाहे पिछले काल मे मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ है, जैसा कि सभी वैदिक इतिहासो के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, परन्तु मन्वंतर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति मे दृढ़ता से मानी गई है। इसीलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना उचित है।" (आमुख, ३) "यदि श्रद्धा

और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है" (वही, ४)। "देव-गण के उच्छृङ्खल स्वभाव, अर्थात् निर्बाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु हुए" (वही, ४)। "श्रद्धा काम-गोत्र की बालिका है, इसीलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायिनी भी कहा जाता है" (वही, ५)। "मनु प्रथम पथ-प्रदर्शक और अग्निहोत्र प्रज्वलित करने वाले तथा अन्य कई वैदिक कथाओं के नायक हैं × × × जलप्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कांड के ८वें अध्याय से आरंभ होता है; जिसमें उनकी नाव के उत्तरगिरि हिमवान में पहुँचने का प्रसंग है। वहाँ ओघ के जल का अवतरण होने पर मनु भी जिस स्थान पर उतरे उसे मनोरवसर्पण कहते हैं" (वही, ५-६)। श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होने के बाद उसी निर्जन प्रदेश में उजड़ी हुई सृष्टि को फिर से आरम्भ करने का प्रयत्न हुआ। किन्तु असुर पुरोहित के मिल जाने से पशुबलि की इस यज्ञ के बाद मनु में जो पूर्वपरिचित देव-प्रवृत्ति जाग उठी, उसने इड़ा के संपर्क में आने पर उन्हें श्रद्धा के अतिरिक्त एक दूसरी ओर प्रेरित किया।

अनुमान किया जा सकता है कि बुद्धि का विकास, राज्य-स्थापना आदि इड़ा के प्रभाव से ही मनु ने किया। फिर तो इड़ा पर भी अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा के कारण मनु को देव-गण का कोप-भाजन होना पड़ा (वही, ७)।

इस वैदिक आख्यान और पौराणिक गाथा को निरुक्तिकारों ने सांकेतिक रूप देने का प्रयत्न किया।

मनु = मन

श्रद्धा = श्रद्धा

[कामायिनी = काम (इच्छा) की जाया]

इड़ा (इला) = बुद्धि

· इड़ा मनुष्यों का शासन करती है—इड़ा मकृरवन्मनुपस्य मानसीम १-३१-११ ऋग्वेद। शतपथ ब्राह्मण मे इड़ा (वाक्-पुत्री) और मनु (मन) अपने-अपने महत्त्व के लिये झगड़ते है।

स्पष्ट है कि इन संकेतो के आधार पर एक विशद रूपक की सृष्टि हो सकती है। मनु को श्रद्धा का सहज ही परिचय होता है, श्रद्धा सहज ही वरण्य है, और मानव इसी की संतान है। प्रगति का मूलमंत्र यही है कि मन श्रद्धा-सम्पन्न होकर आगे बढ़े। परन्तु मन और श्रद्धा के बीच मे एक महान् व्यवधान के रूप मे आती है 'इड़ा'। बुद्धि और श्रद्धा का द्वन्द्व चलता ही रहता है। मन और श्रद्धा के सहयोग से जिस सृष्टि का जन्म होता है, उसे असुर (अहं)-भाव नष्ट कर देता है। देवसृष्टि मे आसुरी आनंद-भाव का मिश्रण मानवता का ह्रास है। इस आसुरी आनन्द-भाव मे प्रेम के स्थान पर वासना और त्याग के स्थान पर आत्मतृप्ति है। प्रेम और त्याग की मूर्ति श्रद्धा (आत्मसमर्पण) को छोड़ कर मनु का चले जाना इसी संघर्ष का प्रतीक है।

इड़ा के संयोग से मनु दूसरी सृष्टि रचते है। वह है बुद्धिवादी विज्ञानमयी सृष्टि। इस विज्ञानमयी ऐश्वर्यशाली सृष्टि का मनु ने बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

> मनु का नगर बसा है सुन्दर सहयोगी हैं सभी बने
> दृढ प्राचीरों में मन्दिर के द्वार दिखाई पड़े घने
> वर्षा-धूप शिशिर में छाया के साधन संपन्न हुए
> खेतों में हैं कृषक चलाते हल प्रमुदित श्रमस्वेद सने
> उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ' अस्त्र नये
> कहीं साहसी ले आते हैं मृगया के उपहार नये

पुष्प-लावियाँ चुनती हैं बन कुसुमों की अर्धविकच कली
गंधचूर्ण था लोध कुसुमरज, जुटे नवीन प्रसाधन थे
घन के आघातों से होती जो प्रचंड ध्वनि रोष भरी
तो रमणी के मधुर कंठ से हृदय मूर्च्छना उधर ढ़ली
अपने वर्ग बनाकर श्रम का करते सभी उपाय वहाँ
उनकी मिलित प्रयत्न प्रथा से पुर की थी दिखती निखरी
देशकाल का लाघव करते थे प्राणी चंचल से हैं
उसका धन एकत्र कर रहे जो उनके सम्बल मे हैं
बढ़ा ज्ञान-व्यवसाय, परिश्रम बल की विस्तृत छाया मे
नर-प्रयत्न से ऊपर आवे जो कुछ वसुधातल में हैं
सृष्टि बीज अंकुरति, प्रफुल्लित, सफल हो रहा हरा-भरा
प्रलय-बीज भी रक्षित मनु से वह फैला उत्साह-भरा
आज सचेतन प्राणी अपनी कुशल कल्पनाएँ करके
स्वालम्ब की दृढ़ धरती पर खड़ा, कहीं अब नहीं डरा

परन्तु बुद्धि (इड़ा) मन पर राज करती है, उसके शासन मे नहीं आती। इसी से मन (मनु) क्षोभ से पीड़ित रहते हैं। वह कहता है—

नही, अभी मैं रिक्त रहा

देश बसाया पर उजड़ा है सूना मानसदेश यहाँ
सुन्दर मुख, आँखों की आशा, किन्तु हुए यह किसके हैं
एक बाँकपन प्रतिपद शशि का, भरे भाव कुछ रिसके हैं
कुछ अनुरोध मानमोचन का करता आँखों का संकेत
बोल अरी मेरी चेतनते ! तू किसकी, ये किसके हैं ?

मनु में इड़ा (बुद्धि) को स्ववश करने की लालसा अत्यंत तीव्रता से जाग्रत हो जाती है। इड़ा मनु (मन) की दुहिता है। उस पर अधिकार करने की प्रवंचना के कारण प्रकृति में विस्फोट होता

है। आत्मजा प्रजा के प्रति कुत्सित भाव ! इड़ा-व्यापी चेतना में विद्रोह की ज्वाला जल उठी।

आहत मनु को इस बार इड़ा (बुद्धि-व्यापार) से घृणा हो जाती है। श्रद्धा उन्हे एक बार फिर सहारा देती है। इड़ा (बुद्धि) प्रताड़ित मन को श्रद्धा ही तो सांत्वना दे सकती है। उन्हें श्रद्धा के प्रति अपने अत्याचार की याद आती है और वे भाग जाते हैं। उधर इड़ा श्रद्धा से क्षमा-याचना करती है। इस प्रकार (इड़ा) बुद्धि का श्रद्धा से व्यवहार कर लेखक एक नये समन्वय की ओर संकेत करता है। इड़ा (बुद्धि) कहती है—

अग्रसर हो रही यहाँ फूट
सीमाएँ कृत्रिम रहीं टूट
श्रम-भाग वर्ग बन गया जिन्हें
अपने बल का है गर्व उन्हें
नियमों की करनी सृष्टि जिन्हें
विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें

सब मत्त पिये लालसा घूँट
मेरा साहस अब गया छूट
मैं जनपद कल्याणी प्रसिद्ध
अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध

मेरे सुविभाजन हुए विषम
टूटते नित्य बन रहे नियम
नाना केन्द्रों में जलधर सम
घिर हट, बरसे ये उपलोपम

यह ज्वाला है इति है समिद्ध
आहुति बस चाह रही समृद्ध

(दर्शन)

श्रद्धा मानव (मनु-श्रद्धा-) पुत्र और इड़ा को छोड़ कर मनु की खोज में निकलती है। वह कहती है—

हे सोम्य, इड़ा का शुचि दुलार
हर लेगा तेरा व्यथा-भार

यह तर्कमयी ! तू श्रद्धामय
तू मननशील, कर कर्म अभय
इसका तू सब संताप निचय
हर ले, हो मानव भाग्य उदय

सबकी समरसता का कर प्रचार
मेरे सुत सुन मा की पुकार

(दर्शन)

तर्क (इड़ा), श्रद्धा (श्रद्धा) और मनन (मनु) पूर्ण कर्म-निरत मानव ही नये संसार की दाग बेल डालेगा—यही कवि को वांछित है। दार्शनिक परिभाषा में इसे ज्ञान, भाव और कर्म की त्रिमूर्ति का एकीकरण कह सकते हैं। इस एकीकरण मे ही आनंद का चिरविलास है। ताण्डवनृत्य पर नटेश (शंकर) सत्ता में व्याप्त महानन्द के प्रतीक है। इस सत्य तक पहुँचने वाली श्रद्धा ही है जो मनु का नेतृत्व करती है और उन्हे इच्छा (इड़ा), ज्ञान (मनु) और भाव के त्रिकोण के बीच मे आनन्द-पिड (जीव की चिदानन्दमयी सत्ता) का दर्शन करती है। श्रद्धा आनन्द की प्रेरणा-शक्ति है। इसी के इंगीत से ज्ञान, इच्छा और कर्म मे समन्वय स्थापित होता है। ज्ञान, कर्म और भाव (इच्छा) के अप्रतिहत आलिगन को ही अमृत-तत्त्व (जीवन की पूर्णता) कहेंगे तीनो का अलग-अलग रहना मृत्यु है, दुःख है। इसी त्रिपुर को बध करने के कारण शिव त्रिपुरारी है। आनन्द (शिव) में ज्ञान, भाव और कर्म के त्रिगुणों का परिहार है।

'कामायिनी' का अपना एक संदेश है। उसे हम दार्शनिक पक्ष नही कह सकते—जीव, आत्मा, परमात्मा जैसे गंभीर विषयो पर कवि को कुछ भी कहना नही है। आधुनिक जिज्ञासा उतनी आध्यात्मिक नहीं है, जितनी आधिभौतिक। अतः आज के कवि के लिये जीवन-दर्शन ही सब कुछ है। मनुष्य अपनी नैसर्गिक विभिन्न शक्तियो का प्रयोग कैसे करे ? उसके जीवन का क्या लक्ष्य हो ? वैयक्तिक और सामूहिक चेतना में समन्वय कैसे स्थापित हो ? ज्ञान, श्रद्धा कर्म इन त्रिसत्यो को किस अनुपात मे ग्रहण किया जाये। वर्तमान युग विज्ञानमयी तर्कप्रवीण बुद्धिमत्ता का युग है। पिछला युग श्रद्धामूलक विश्वास का युग था। तब भाव की विजय थी अतः तर्क (बुद्धि) की। प्रसाद ने दोनो युगो मे ठीक पटरी बिठाने की चेष्टा की है। वर्तमान समता विज्ञान-प्रधान, बुद्धि-जीवी है—इसीलिये अधिकारो पर बल है, और वर्ग-संघर्ष के बादल चारो ओर उमड़ रहे है। प्रसाद का संदेश है कि विज्ञान और बुद्धि की अपनी सीमाएँ है—ये आसुरभाव को जाग्रत कर सकते है। देवभाव की जाग्रति के लिये श्रद्धा की ओर देखना होगा। आनन्द ही सत्य है। आनन्द शिव (कल्याण-मूर्ति) भी है। इसी आनन्द की प्राप्ति भावी जीवनदर्शन होगा। इसके लिये हृदय-बुद्धि का सामंजस्य आवश्यक है। इड़ा (बुद्धि) और श्रद्धा के सहयोग से ही मानव (मननशील प्राणी) सच्चे स्वर्ग सुख की प्राप्ति कर सकेगा। ध्येय न इड़ा है, न श्रद्धा, आनन्द है। इस विश्व के मूल मे आनन्द ही है, जिसके प्रतीक रूप मे ऋषियो ने शंकर के ताडव-नृत्य कल्पना की है। प्रत्येक जीव इस महाआनंद का प्रतीक है। स्फुलिग है, जिस प्रकार ज्वाला अरणि-द्वारा प्रगट होती है, उसी प्रकार श्रद्धा-बुद्धि के समन्वय से युक्त जीवन मे आनंद की अग्नि स्वतः फूट पड़ेगी। जीवन के भीतर का आनन्द बाहर प्रगट होगा और वह इस

विश्व-प्रपंच में शिव (कल्याण) के तांडव-नृत्य (आनंदोल्लास) का दर्शन करेगा। श्रद्धा के शब्दों मे—

> चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
> वह रूप बदलता है शत शत
> कण विरह-मिलन-मय नृत्य-निरत
> उल्लासपूर्ण आनन्द सतत
> तल्लीनपूर्ण है एक राग
> झंकृत है केवल जाग जाग
>
> (दर्शन)

इस प्रकार "कामायिनी एकांगी अव्यवहारिक, निर्बल तथा ह्रासोन्मुख रूढ़ि के स्थान पर, व्यापक और बहुमुखी जीवन-दृष्टि का संदेश सुनाती और नियोजना करती है" (नन्ददुलारे वाजपेयी—'जयशंकर प्रसाद' पृ० ८८)। मानव-दर्शन का पहला सफल प्रयोग 'कामायिनी' मे हुआ है। मनु मनस्तत्त्व के प्रतीक है। स्वयम् मनु अपूर्ण हैं जब तक श्रद्धा से उनका योग नहीं होता। मनस्तत्त्व पर जब श्रद्धा की छाप पड़ती है, तो सहज मानव-भाव का जन्म होता है। इस श्रद्धास्पदा सहज मानव-भाव (मनस्तत्त्व+श्रद्धा) को इड़ा (बुद्धि) के साथ सारस्वत (बौद्ध) प्रदेश का शासन सौंप दिया जाता है। इड़ा मानव की सौतेली मा है। मनु के नाते वह मानव-भाव का पोषण भी करती है। मनस्तत्त्व श्रद्धा और बुद्धि के सहारे कर्मपथ को पहचान कर आगे बढ़े, यह प्रसाद का सदेश है। इसी से यह कामायिनी की कथा तो है ही, मनुष्य के क्रियात्मक, बौद्धिक, भावात्मक विकास में सामञ्जस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है (वही, ८५)। 'कामायिनी' मनु (मन) के विकास की कथा है। मनु (मन) का सहज नर-भाव है चिंता (मनस्तत्त्व)। शुद्ध देव-

भाव में तो चिंता है ही नही, मन अविकारी स्पन्दनमात्र है। देव-भाव के नाश (जलप्लावन, प्रलय) के बाद मन मे विकार (चिंता) का उदय होता है। अतः नर-भाव से मन का एकांतिक गुण 'चिंता' हो गया है। काम (इच्छा)-कुमारी श्रद्धा ही इस विकार (चिंता) को दूर कर सकती है। परन्तु श्रद्धा में रंगीनी नहीं, इड़ा मे वह है। अतः मनु इड़ा के चक्र से जब तक प्रताड़ित नही होते, तब तक श्रद्धा के वास्तविक मूल्य को नही समझते। तब श्रद्धा ही उन्हें इड़ा (बुद्धि) के विज्ञानमय वात्या-चक्र से निकाल कर शुद्ध भाव-भूमि पर खड़ा करती है। मनु फिर भी श्रद्धा से अलग रह स्वतंत्र मार्ग निकालना चाहते है। यह असंभव है। श्रद्धा ही उन्हे उँगली पकड़ कर आगे बढ़ाती है। भावलोक, ज्ञानलोक और कर्मलोक (सत, रज, तम) के त्रैत (त्रिपुरी) में होकर मन आनन्द की प्रकृत भूमि पर पहुँचता है। यही लक्ष्य है। ज्ञानभूमि, भावभूमि और कर्मभूमि में संघर्ष ही आधुनिक मानव की विडम्बना है। श्रद्धा ही इस संघर्ष को दूर कर सकती है। श्रद्धा की मुस्कान से त्रिपुर (त्रैत) का अन्त होता है। तब श्रद्धायुत मन (मनु) अपूर्व तन्मयता (दिव्य अनाहत) का अनुभव करता है। जहाँ तक संसार की बात है, इड़ा और श्रद्धा के योग से उसको चलाना होगा। काव्य के अन्त मे कामायिनी के पुत्र (मानव) और पुत्रवधू (इड़ा) का अभिषेक इसी का प्रतीक है। परन्तु अध्यात्म जगत मे श्रद्धा (भाव), ज्ञान (बुद्धि) और कर्म से आगे दिव्यानन्द (शिवतांडव) की तन्मयता ही ध्येय है।

इस सम्बन्ध मे प्रसाद के तीनो जगतो के चित्र देखने योग्य है :—

भावलोक का चित्र

> शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की
> पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ ;

चारों ओर नृत्य करतीं ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ
इस कुसुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में
इठलातीं सोतीं जगतीं ये
अपनी भावमयी माया मे

वह संगीतात्मक ध्वनि इनकी
कोमल अगड़ाई है लेती
मादकता की लहर उठाकर
अपना अंबर तर कर देती

आलिङ्गन-सी मधुर प्रेरणा
छू लेती, फिर सिहरन वनती ;
नव अलम्बुना की क्रिड़ा सी
खुल जाती है, फिर जा मुँदती
यह जीवन की मध्यभूमि है
रसधारा से सिञ्चित होती ;
मधुर लालसा की लहरों से
यह प्रवाहिका स्पदित होती

जिसके तट पर विद्युतकण से
मनोहारिणी आकृति वाले
छायामय सुषमा में विह्वल
विचर रहे सुन्दर मतवाले

सुमन-संकुलित भूमिरंध्र से
मधुरगंध उठती रसभीनी ;
वाष्प अनन्य फुहारे इसमें
छूट रहे, रस-बूँदे झीनी

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक
चलचित्रों-सी संसृति छाया
जिस आलोक-विन्दु को घेरे
वह बैठी मुस्क्याती माया

## ज्ञानलोक का चित्र

प्रियतम, यह तो ज्ञान-क्षेत्र है
सुख दुःख से है उदासीनता
यहाँ न्याय निर्मम चलता है
बुद्धि-चक्र, जिसमे न दीनता

अस्ति-नास्ति का भेद, निरङ्कुश
करते ये अणु तर्क युक्ति से
ये निस्संग किन्तु कर लेते
कुछ सम्बन्ध-विधान युक्ति से

यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
तृप्ति नहीं, कर भेद बाँटती
बुद्धि, विभूति, सकल सिकता-सी
प्यास लगी है, ओस चाटती

न्याय, तपस, ऐश्वर्य मे पगे
ये प्राणी चमकीले लगते;
इस निदाघ-मरु में, सूखे से
स्रोतों के तट जैसे जगते

मनोभाव से कार्य-कर्म का
समतोलन में दत्त-चित्त से;
ये निस्पृह न्यायासन वाले
चूक न सकते तनिक वित्त से

अपना परिमित पात्र लिये ये
बूँद बूँद वाले निर्झर से;
माँग रहे हैं जीवन का रस
बैठे यहाँ पर अजर-अमर से

× × ×

सामञ्जस्य चले करने ये
किंतु विषमता फैलाते हैं;
मूल स्वत्व कुछ और बताते
इच्छाओं को झुठलाते हैं

## कर्मलोक का चित्र

कर्मलोक सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति-प्रेरणा;
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नयी एषणा
श्रममय कोलाहल, पीड़नमय
विकल प्रवर्तन महामन्त्र का
क्षण भर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रियातंत्र का
भाव-राज्य के सकल मानसिक
सुख यों दुःख में बदल रहे हैं
हिंसा गर्वोन्नत हारों मे
ये अकड़े अणु टहल रहे हैं

× × ×

नियति चलाती कर्म-चक्र यह
तृष्णा-जनित ममत्व कामना

'कामायिनी' [क]

पाणिपादमय पञ्चभूत की
यहाँ हो रही है उपासना
यहाँ सतत संघर्ष, विफलता
कोलाहल का यहाँ राज्य है
अंधकार में दौड़ लग रही
मतवाला यह सब समाज है

इन 'लोकों' से ऊपर है 'शिव' का आनन्दलोक—

क्षण भर मे सब परिवर्तित
अणु-अणु थे विश्वकमल के
पिंगलपराग से मचले
आनन्द सुधारस छलके
अति मधुर गंध वह बहता
परिमल बूँदों से सिञ्चित
सुखस्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रञ्जित

× × ×

वल्लरियाँ नृत्य-निरत थीं
बिखरी सुगंध की लहरें
फिर वेणुरंध्र से उठकर
मूर्च्छना कहाँ अब ठहरी !
गूँजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर
वाणी की वीणा ध्वनि-सी
भर रही शून्य मे झिलकर

(आनंद)

इस प्रकार 'प्रसाद' शैवागमों के सूत्रो को इकट्ठा कर एक निश्चित 'आनन्दवाद' की स्थापना करते हुए दिखाई देते हैं। 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति' (गृहस्थ और वैराग्य) की बँधी हुई लीकों के अतिरिक्त 'आनन्दवाद' की एक धारा प्राचीन आर्यों के समय से चली आई है इसमें 'नीतिवाद' (पाप-पुण्य) का पचड़ा नहीं। संत-भक्त-साहित्य मे निवृत्ति की ही महत्ता है। संतों में केवल तुलसी ने ही दोनों को ग्राह्य बनाया है, परन्तु बल निवृत्ति पर ही है। मार्ग कोई भी हो, मनुष्य 'मर्यादा-भाव' (मर्यादा-मार्ग) से रहे, यह 'मध्यम मार्ग' है। प्रसाद ने पीछे लौट कर इन्द्र के समय की ओर इगित किया। आर्यों और शैवागमों के आनन्द-वाद को आधुनिकता का रूप देकर उन्होंने वर्तमान सभ्यता को एक नया पथ दिया है। उनकी यह दार्शनिक देन शताब्दियों से 'दुःखवाद' (मायावाद) में विश्वास करने वाले भारत के लिये कितनी महत्त्वपूर्ण है, यह सुधी आलोचक समझें। जहाँ करुणा (दुःख, पश्चात्ताप ) की भावना मनुष्य को छोटा करती है और उसे आत्ममुख बनाती है, वहाँ आनन्द की भावना उसे संपूर्ण विश्व से योजित करती है।

[ ४ ]

'कामायिनी' का एक दूसरा पक्ष भी है—साहित्य पक्ष। इस पक्ष के नाते भी प्रसाद की यह कृति महत्त्वपूर्ण है। ऊपर हम 'रोमांटिक काव्य' (स्वच्छन्दतावाद) की विवेचना कर चुके हैं। प्रसाद की कामायिनी इस 'वाद' की अन्यतम निधि है। इस 'वाद' की शक्ति और दुर्बलता का एक साथ प्रदर्शन यहीं दिखलाई पड़ता है।

स्वच्छन्दतावाद के कवि जीवन और प्रकृति को मुख्यतः आंशिक (Fragmentary) रूप में देख सके हैं। एक संपूर्ण चित्र

उपस्थित करने का पहला प्रयत्न 'कामायिनी' है। कथा एवं कथा-विकास की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण नही कही जा सकती। सारी कथा का कथा रूप और रूपक रूप एक साथ चलाने का प्रयत्न हुआ है। इससे कथा में उपयोगी विकास नहीं हो सका। और कथा की स्थूलता रूपक में बाधक होती है! सच तो यह है कि कामायिनी की भूमि, भाषा, शैली, छंद—सभी नई वस्तुएँ है। इतने पक्षों मे एक साथ नवीनता होने से काव्य जन-मन-भूमि से अलग जा पड़ा है। 'मानस' के कवि की लोकप्रियता का कारण यह है कि उसने सभी भूमियों में एकांत मौलिकता का आग्रह नहीं किया है। रामकथा जनपरिचित है। छन्दों को अवधी के सूफी कवियों और उनसे भी पहले ही सिद्ध, जैन और सामंत काव्य ने जनता को परिचित करा दिया था। भाषा अभिधात्मक है और प्रसादपूर्ण, अतः मध्ययुग के ग्रामीण कृपक मन को भी इसके समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। जहाँ तक राम के ब्रह्मवाद, रामभक्ति, रामभक्तिमय मर्यादा-प्रधान जीवन और ज्ञान के ऊपर भक्ति की स्थापना की बात है, वहाँ तक तुलसी एकदम मौलिक हैं। 'प्रसाद' की रचना मे मौलिकता के पक्षों की अनेकता उसकी लोकप्रियता में बाधक होगी, यह निश्चय है। उनके इस छोटे-से काव्य मे कथा मौलिक ही नहीं है, रूपक-तत्त्वों और मानसिक हलचलों पर खड़ी होने के कारण, वह नितांत जटिल है। उसकी रूपकात्मकता उसकी सरसता मे बाधक होती है और उसका जीवन-दर्शन आत्मा-परमात्मा विषयक न होने पर भी एकांततः सरल नहीं है।

स्पष्ट है कि कथा में नहीं, काव्य की शैली और उसकी आत्मा में परिवर्तन लाने की दृष्टि से प्रसाद अधिक महत्त्वपूर्ण है—"उनमें एक नई कल्पना-शीलता, नूतन जागरूक चेतना, मानस-वृत्तियों की सूक्ष्मतर और प्रौढ़तर पकड़, एक विलक्षण अवसाद,

विस्मय, संशय और कौतूहल जो नई चेतना का सूक्ष्म प्रभाव है, प्रगट हो रहा है। ये ही काव्य में छायावाद के उपकरण बन कर आये। इस नवीन प्रवर्त्तन के मूल में एक स्वातंत्र्य लालसा, शक्ति की अभिज्ञता और सांस्कृतिक द्वन्द्व की अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है (वही, १८)। सब जगह वह बराबर सफल नहीं सही, परन्तु अपने क्षेत्र में उनकी सफलताएँ भी कम नहीं हैं।

प्रसाद के काव्य की सबसे सुन्दर चीज़ उनकी उदात्त और संपन्न कल्पना है। उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं के रूप में यह 'कामायिनी' भर में बिखरी पड़ी है। आधुनिक किसी भी कवि से वह इस क्षेत्र में नूतन, प्रगतिशील और शक्तिवान है। पहले ही सर्ग में 'चिंता' को कवि की प्रचुर कल्पना अनेक रंग उपस्थित करती है—

ओ चिन्ता की पहली रेखा<br>
अरी विश्ववन की व्याली<br>
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण<br>
प्रथम कंप-सी मतवाली!<br>
हे अभाव की चपल बालिके,<br>
री ललाट की खल रेखा<br>
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ<br>
जलमाया की चल-रेखा<br>
इस ग्रहकक्षा की हलचल री<br>
तरल गरल की लघु लहरी<br>
जरा अमर जीवन की, और न<br>
कुछ कहने वाली, बहरी!<br>
अरी व्याधि की सूत्रधारिणी<br>
अरी आधि, मधुमय अभिशाप

हृदय गगन में धूमकेतु सी
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप
आह ! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों मे करका-घन सी
छिपी रहेगी अतरतम में
सब के तू निगूढ़-धन सी
(चिन्ता)

यही कल्पना की प्रचुरता स्वच्छन्द काव्य का प्राण है, परन्तु यहो उसे दुर्भेद्य बना देती है। जहाँ अभिव्यंजना की वक्रता भी आ मिली है, वहाँ साधारण मनीषा चमत्कृत होकर ही रह जाती है जैसे मृत्यु पर लिखी हुई इन पंक्तियों की भंगिमा—

मृत्यु, अरी चिर निद्रे ! तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल
तू अनन्त मे लहर बनाती
काल-जलधि की-सी हलचल
महानृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पदनों की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा देकर अभिशाप
अधकार के अट्टहास-सी
मुखरित सतत चिरतन सत्य
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू
यह सुन्दर रहस्य ही नित्य
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घन-माला में
सौदामिनी-सधि सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला में (चिंता)

श्रद्धा के प्रथम दर्शन का चित्र आधुनिक साहित्य के नारी सौन्दर्य अंकन की नई तूलिका ने एक अतीव नूतन कलम की सृष्टि की है—

मसृण गाधार देश के नील
रोम वाले मेषों के चर्म
ढँक रहे थे उसका वपुकात
बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन श्याम
अरुण रविमडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि-धाम
या कि नव इन्द्र नील लघु शृग
फोड़ कर धधक रही हो कात
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी मे अश्रात
घिर रहे वे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास
और उस मुख पर वह मुस्क्यान !
रक्त-किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति
उषा की पहली लेखा कांत
माधुरी से भींगी भर मोद
मद-भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद (श्रद्धा)

कहीं-कहीं उपमाएँ अत्यन्त नवीन हैं। जैसे उद्भ्रांत मनु प्रथम दर्शन के समय अपना परिचय श्रद्धा को देते हैं—

क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रांत ?
विवर मे लीन गगन में आज
वायु की भटकी एक तरंग
शून्यता का उजड़ा-सा साज
एक विस्मृति का स्तूप अचेत
ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिम्ब
और जड़ता की जीवन-राशि
सफलता का संकलित विलम्ब

इस प्रकार के अतीन्द्रिय, मानसिक व्यापारों के उपमान पाठक को सहज ग्राह्य नहीं हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु एक स्थान पर इतने नवीन उपमान-प्रयोगों का संग्रह मूर्त्तिमत्ता-प्रधान छायावाद काव्य मे भी अन्य स्थान पर उपलब्ध नहीं है।

अनेक स्थान पर कवि नई मूर्तियाँ निर्माण करता है, जैसे श्रद्धा के अलस सौन्दर्य का संकेत है—

माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा-सी (काम)

अथवा

कौन हो विश्वमाया कुहुक-सी साकार
प्राण सत्ता के मनोहर भेद-सी सुकुमार

(वासना)

सुन्दर उपमानो की मदिर मादकता से कामायिनी का पृष्ठ-पृष्ठ सुरभित है। जान पड़ता है, प्रसाद ने स्वयं इस रचना में छंद-छन्द पर रुक कर आनन्द प्राप्त किया है और प्रत्येक छवि को कल्पना की कूँची से सँवार-सँवार कर देखा है, जैसे—

श्याम नभ में मधु किरन-सा फिर वही मृदु हास
सिंधु की हिलकोर दक्षिण का समीर विलास
कुञ्ज मे गुञ्जरित कोई मुकुल-सा अव्यक्त
लगा कहने अतिथि, मनु थे सुन रहे अव्यक्त

(वासना)

कर्मसूत्र सकेत सदृश थी
सोमलता तब मनु को
चढ़ी शिंजिनी-सी खींचा फिर
उसने जीवन धनु को

(कर्म)

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों मे आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह !
मातृत्व-बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीठा आज
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज

. 'कामायिनी' [क]

सोने की सिकता में मानो
कालिंदी बहती भर उसाँस
स्वर्गंगा में इन्दीवर की
था एक पंक्ति कर रही हास
कटि में लिपटा था वसन नवल
वैसा ही हलका बुना नील
दुर्भर थी गर्भ-मधुर पीड़ा
झेलती उसे जननी सलील

(ईर्ष्या)

रूप के इस प्रकार के स्निग्ध चित्र कामायिनी में अनेक मिलेंगे। इड़ा का एक चित्र है—

बिखरीं अलकें ज्यों तर्कजाल
यह विश्वमुकुट-सा उज्ज्वल तम, शशिखंड सदृश सा स्पष्ट भाल
दो पद्मपलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुञ्जरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा ज्ञान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे, संसृति के वन विज्ञान गान
था एक हाथ में कर्मकलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवेणी थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल

(इड़ा)

कामायिनी की विरह-वेदना का कितना सजीव चित्र है—

कामायिनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रङ्ग कहाँ
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही
वह संध्या थी, रवि शशि तारा में सब कोई नहीं जहाँ

जहाँ तामरस इन्दीवर या सित सरसिज हैं मुरझाये
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये
वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल मे जम जाये
एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झंकार नहीं
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
हरित कुञ्ज कभी छाया भर थी वसुधा आलिङ्गन करती
वह छोटी-सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं
नील गगन मे उड़ती-उड़ती विहग बालिका-सी किरनें
स्वप्नलोक को चलीं थकी सी नींद-सेज पर जा गिरने
किन्तु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं
बिजली-सी स्मृति चमक उठी तब जभी लगे तमघन घिरने
संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे
शैल-घाटियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे
तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुःख की गाथा
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिल कर जो स्वर झरते थे

(स्वप्न)

आधुनिक काव्य मे नारी के जितने सजीव सुन्दर चित्र काव्य को मिले हैं, उतने कृष्ण-काव्य की राधा को छोड़ कर किसी अन्य नारी चरित्र को नहीं मिले। छायावाद के कवि ने नारी को वासना के गर्त से उठाकर उसे हृदय-देवी बनाकर अनेक ढंग से उसकी छवि अंकित की। प्रसाद का काव्य नारी जागरण के युग की कला की सर्वोत्तम निधि है। उसमें अजंता की नारी आकृतियों की ऐश्वर्यमयी भावभंगी नहीं सही, परन्तु उसमें सौन्दर्य की नई परख अवश्य सब कहीं मिलेगी।

[ ५ ]

कामायिनी प्रकृति की विशाल भूमिका पर खड़ी है। उसमें

जलप्रलय का हाहाकार भी है और वसंत की मधुरिमा भी। छायावाद काव्य में पंत, निराला और महादेवी ने प्रकृति को नये ढंग से उद्दीप्त कर, सजा-सँवार कर, सामने रखा है, परन्तु प्रसाद के काव्य मे ही प्रकृति अपनी संपूर्ण सम्पन्नता को लेकर जाग सकी है। अधिकांश चित्र भावनाओं के घात-संघात से मनोरम होकर सामने आते हैं, जैसे—

मै था सुन्दर कुसुमोंली वह
सघन सुनहली छाया थी
मलयानिल की लहर उठ रही
उल्लासों की माया थी
उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखे मींचे
ले मकरन्द नया चू पड़ती
शरद प्रात की शैफाली
बिखराती सुख ही, सध्या की
सुन्दर अलकें घुँघराली (निर्वेद)

यह चंद्रहीन की एक रात
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात
उजले उजले तारक झलमल
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
धारा वह जाती बिंब अटल
खुन्दता ला धीरे पवनपटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्षपांत
सुनती जैसे कुछ निजी बात
(दर्शन)

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी मे निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे, जैसे वे निठुर, जड़ विषाद
वही थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान
थी कर्म निरंतरता-प्रतीक, चलता था स्ववश अनन्त ज्ञान
हिम शीतल लहरों का रह-रह कूलो से टकराते जाना
आलोक अरुण किरनो का उन पर अपनी छाया बिखराना
अद्भुत था, निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद
कहता जाता कुछ सुस वाद
प्राची मे फैला मधुर राग
जिसके मडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोकरश्मि से बुना उषा अंचल मे आन्दोलन अमन्द
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरन्द
उस नव्य फलक पर नवल चित्र-सी प्रगट हुई सुन्दर बाला
वह नयन-महोत्सव की प्रतीक, अम्लान मालिन की नवमाला
सुषमा का मडल सुरभित-सा, बिखराता संसृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग (इड़ा)

धीरे धीरे जगत चल रहा
अपने उस रज्जु-पथ में
धीरे धीरे खिलते तारे
मृग जुतते विधुरथ मे
अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्स्नाशाली
जिसकी छाया मे सुख पाये
सृष्टि वेदना वाली

उच्च शैलशृंगों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला
धवल हँसी बिखराती अपनी
फैला मधुर उजाला (कर्म)

सृष्टि हँसने लगी आँखों मे खिला अनुराग
राग-रंजित चद्रिका थी, उड़ा सुमन पराग
और हँसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ
चले दोनो, स्वप्न-पथ मे स्नेह-सबल साथ
देवदारु निकुञ्ज गह्वर सब सुधा मे स्नात
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गंध
पवन के घर घिरे पडते थे बने मधुअध
शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कात
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रात
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रात
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कात
(वासना)

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कामायिनी' की कथावस्तु प्रकृति की विराट रंगभूमि पर चित्रित की गई है। प्रकृति के महाप्रलय विक्षेप से प्रारंभ कर हियालय के शांत प्रदेश मे नैसर्गिक सुख ऐश्वर्य के बीच मे आनन्द का हास-विलास—इतनी बड़ी कामायिनी की चित्रपटी है। प्रसाद ऐश्वर्यशील प्रकृति-चित्रों के लिये प्रसिद्ध है। 'कामायिनी' मे ऐसे चित्रो की कमी नहीं है। हमने देखा है कि अपनी कविता के आरंभकाल से ही प्रसाद प्रकृति को आलंबन मान कर लिखते रहे है। 'कामायिनी' के प्रकृति-चित्र विश्वकाव्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-चित्रों के सन्मुख रखे जा सकते हैं। अंतिम चित्र देखिए—

अति मधुर गंध वह बहता
परिमल बूँदों से सिंचित
सुख स्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रंजित
जैसे असख्य मुकुलों का
मादन विकास कर आया
उनके अछूत अधरों का
कितना चुम्बन भर लाया
रुक-रुक कर कुछ इठलाता
जैसे कुछ हो वह भूला
नव कनक-कुसुम-रज धूसर
मकरंद जलद-सा फूला
जैसे वनलक्ष्मी ने ही
विखराया हो केसर-रज
था हेमकूट हिमजल में
झलकाता परछाईं निज
संसृति के मधुर मिलन के
उच्छ्वास वनाकर निज दल
चल पड़े गगन आँगन मे
कुछ गाते अभिनव मंगल
वल्लरियाँ नृत्यनिरत थीं
विखरी सुगध की लहरे
फिर वेणुरन्ध्र से उठकर
मूर्छना कहाँ अब ठहरे (आनंद)

इस आनन्द-चित्र के साथ 'कामायनी' की परिसमाप्ति है। क्षुब्ध मनु क्षुब्ध प्रकृति से ऊपर उठकर आनन्दमय नैसर्गिक लोक में शांति पाते है।

[ ६ ]

'कामायिनी' की शैली एक आनन्दमय कवि की शैली, स्वच्छन्द क्रीड़ा शैली है। इस शैली के पीछे प्रसाद का व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन है। प्रसाद ऊपर से निर्मम और निर्लेप व्यक्ति थे, परन्तु जैसा नंददुलारे वाजपेई ने लिखा है वे 'बनारसी रंग' मे मस्त रहते थे ('व्यक्ति की झलक'—जयशंकर प्रसाद)। इस बनारसी रंग का मतलब है, स्वयम् अपने अस्तित्व में आनन्द का अनुभव करना। वे 'आनन्दवादी' कवि थे। इसी से जीवन का आनन्द उनकी कृतियो में है, विराग की समरसता नहीं। उनका साहित्य मे जीवन के सौंदर्य, कल्पना और शक्तिमती उदात्त भावनाओं से सम्बद्ध करने का स्वस्थ प्रयत्न है। जहाँ-जहाँ विलास और स्वच्छन्दवादी अमीरी का रंग गहरा चढ़ा है, वहाँ-वहाँ पलायनवादी प्रवृत्तियो का ढूँढना अच्छा नही। वहाँ सूत्र प्रसाद की जीवन-सम्बन्धी धारणा के हाथ मे चला जाता है।

प्रसाद की शैली मे जो बात सबसे ऊपर तिरती है, वह उनकी मादकता है। उनकी शैली मे नीरसता कही नही है। 'कामायिनी' बृहद् ग्रन्थ होने पर भी कही नीरस नहीं लगता। उसका कथानक शिथिल है। पहले कदाचित् प्रसाद ने केवल कथासूत्र भर लेकर प्रेम-काव्य लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु बाद मे उन्होंने रूपक का सहारा लेकर इस कथा को जीवन-दर्शन का रूप दे दिया। इस प्रकार कथा की अविच्छिन्न धारा में बाधा पड़ी। फल यह हुआ कि काव्य का उत्तर भाग जटिल दार्शनिक तर्कनाओं से बोझिल हो उठा है। परन्तु पहले भाग मे काव्य और कला के उच्चतम तत्त्व मिलेगे और प्रसाद की भारती पग-पग पर झकृत होती आगे बढ़ेगी।

प्रसाद के संबंध मे यह नहीं भूलना होगा कि वे नाटककार

हैं, अतः उन्होंने साधारण महाकाव्य की शैली नहीं अपनायी। उन्होंने नाटकीयता का भी समावेश कर दिया है, जो काव्य-परिपाटी के बाहर की चीज है। कथा-विकास मे इससे कुछ बाधा पड़ती है, परन्तु नई होने के कारण यह शैली उपार्जनीय है। बहुतकर इसलिए भी कि प्रसाद इतिवृत्तात्मक कथा-काव्य (रोमांस) नहीं लिख रहे। वे सूक्ष्म मनोतत्त्वों के विकास की कथा भी कह रहे हैं। वास्तव में उन्होंने मनोविज्ञान को कथा-सूत्रोंके ऊपर रख दिया है। सर्गों के शीर्षक ही इसका सबूत हैं—१ चिंता, २ आशा, ३ श्रद्धा, ४ काम, ५ वासना, ६ लज्जा, ७ कर्म ८ ईर्ष्या, ९ इड़ा, १० स्वप्न, ११ संघर्ष; १२ निर्वेद १३ दर्शन, १४ रहस्य, १५ आनन्द। देवत्व से शिथिल होनेपर चिंता का जन्म हुआ। चिंता ने आशा को जन्म दिया। आशा ने मनु (मानव) को श्रद्धा का परिचय कराया। मनु ने श्रद्धा का उपयोग किया (काम, वासना, लज्जा)। इसके बाद मनु अप्रतिहत कर्मस्रोत मे बहने लगते है और श्रद्धा से उसके सहज संतोष और अमृततत्त्व के कारण उन्हें घृणा होने लगती है (कर्म, ईर्ष्या)। पुरुष कर्म-प्रधान है। नारी संतोषमयी। श्रद्धाहीन हो मनु (मन) इड़ा (बुद्धि) का सहारा लेकर नए जगत का निर्माण करता है (इड़ा, स्वप्न)। इस श्रद्धाविहीन अनात्मवादी कर्म-प्रधानता का वह हुआ जो होता—'संघर्ष'। सहज श्रद्धा से हीन जनता बुद्धि के जड़तामय जटिल जाल के प्रति विद्रोह कर उठती है (संघर्ष)। इस संघर्ष के कारण मनु (मन) में निर्वेद का जन्म स्वाभाविक है (निर्वेद)। मनु (मन) एकदम कर्मविरत हो जाते हैं और कर्म मे नहीं, अकर्म मे शांति की खोज करते है। परन्तु यहाँ भी श्रद्धा के बिना उन्हे शांति की प्राप्ति असम्भव है (दर्शन)। श्रद्धा उन्हे जीवन के समन्वयात्मक रहस्य से परिचित कराती है, कि पूर्ण शांति की प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और भाव का संतुलित योग आवश्यक है। बात सीधी-साधी होने

पर भी रहस्य है (रहस्य)। इस ज्ञान-भाव-कर्म-समन्वित जीवन से ही मनुष्य को आनन्दयोग की सहज-प्राप्ति होती है। अतः मनु की कहानी मन की कहानी है जो शांति की खोज में श्रद्धा, इड़ा (बुद्धि) और कर्म की अलग-अलग साधना करने पर असफलता को प्राप्त होता है। तीनों के समन्वय से ही शुद्ध आनन्दतत्त्व की प्राप्ति होती है (आनन्द)।

इस प्रकार कथा, रूपक और दर्शनशास्त्र को अलग-अलग रखने से काव्य का चमत्कार कुछ कम अवश्य हो गया है, परन्तु कुछ प्रासंगिक विषय अपने स्थान पर अपूर्व हैं। कवि ने मनोविज्ञान की शैली अपना कर नए सूत्रों का गुम्फन कर दिया है। इन्हीं में एक लज्जा का अत्यंत सुन्दर प्रकरण है। यह सर्ग लज्जा और नारी के कथोपकथन के रूप में हमारे सामने आता है। लज्जा का ऐसा सुन्दर मनोवैज्ञानिक अध्ययन सारे भारतीय साहित्य में नहीं मिलेगा—

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद बिखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों
वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए

नीरव निशीथ मे लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये-सी
आलिङ्गन का जादू पढ़ती

किन इंद्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधुधार ढरे ?

पुलकित कदम्ब की माला सी
पहना देती हो अतर में
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में

बरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरणो से बुना हुआ
यह अंचल कितना हलका-सा
कितने सौरभ से सना हुआ

सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता मे बलखाती हूँ
मैं सिमट रही-सी अपने मे
परिहास गीत सुन पाती हूँ

स्मित बन जाती तरल हँसी
नयनों में भर कर बाँकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो
वह बनता जाता है सपना
मेरे स्वप्नों के कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा

अनुराग समीरों पर तिरता
　　　　था इतराता-सा डोल रहा
अभिलाषा अपने यौवन मे
　　　　उठती उस सुख के स्वागत को
जीवन भर के बल वैभव से
　　　　सत्कृत करती दूरागत को
किरणों का रज्जु समेट लिया
　　　　जिसका आलंबन ले चढ़ती
रस के निर्झर मे धँस कर मैं
　　　　आनद शिखर के प्रति बढ़ती
छूने में हिचक, देखने में
　　　　पलके आँखो पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी .गूँजे
　　　　अधरो तक सहसा रुकती हैं
संकेत कर रही रोमाली
　　　　चुपचाप बरजती खड़ी रही
भाषा बन भौंहो की काली
　　　　रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही

इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद की शैली की कुछ मुख्य बातें है शैली की मादकता, संपन्नता (विलासता), मनोवैज्ञानिकता स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने की प्रवृत्ति, शैली की संस्कृतमयता और कहीं-कहीं तज्जनित-जटिलता। भावों की लुकाछिपी जो दार्शनिक (या गंभीर जीवनदर्शी ग्रंथ मे आवश्यक थी)। परन्तु हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रसादजी के काव्यकाल (१६०६-१६३६) छायावाद काव्य के जन्म और विकास की कहानी से और प्रसादजी छायावादी मूर्त्तिमत्ता, भाव और भाषा के उन्नायकों में प्रधान थे। अतः उनके काव्य की प्रौढ़ता (चाहे उसमे

थोड़ी अस्पष्टता भी रही हो) उनके लिए श्रेय ही लायेगी। कौन हिंदी का कवि है जो अनन्त की रहस्यमयता को इतनी प्रौढ़ता और समर्थता से व्यक्त करता है—

इस विश्वकुहर मे इन्द्रजाल
जिसने रचकर फैलाया है ग्रहतारा विद्युत नखत-व्याल
सागर की भीषणतम तरङ्ग-सा खेल रहा वह महाकाल
तब क्या इस वसुधा के लघु-लघु प्राणों को करने को सभीत
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश को रही जीत
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि उसे जो नाशमयी
उसका अधिपति ! होगा कोई, जिस तक दुःख की न पुकार गई
सुख नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रवाल
किसने यह पट है दिया डाल
(इड़ा)

किस आधुनिक कवि ने प्रेम और यौवन के आत्मसमर्पण का इतना मादक वर्णन किया है—

सहसा अधकार की आँधी
उठी क्षितिज से वेग भरी
हलचल से विक्षुब्ध विश्व की
उद्वेलित मानस - लहरी

व्यथित हृदय उस नीले नभ में
छाया-पथ-सा खुला तभी
अपनी मङ्गलमयी मधुर स्मिति
कर दी तुमने देवि, जभी

दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि
लगी खेलने रंगरली

नवल हेम लेखा-सी मेरे
हृदय निकष पर खिंची भली
अरुणाचल मनमंदिर की वह
मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा
लगी सिखाने स्नेहमयी-सी
सुन्दरता की मृदु महिमा
उस दिन तो हम जान सके थे
सुन्दर किसको हैं कहते
तब पहचान सके किसके हित
प्राणी सब दुख-सुख सहते

× × ×

हृदय बन रहा था सीपी-सा
तुम स्वाती की बूँद बनीं
मानस शतदल डाले उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनीं
तुमने इस सूखे पतझड़ में
भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है
तृप्ति बन गयी वह इतनी

( निर्वेद )

किस कविने कालिदास स्पर्द्धी ऐश्वर्य का वर्णन किया है—

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक में मलय बालिका सी चलती
सिंहद्वार के भीतर पहुँची खड़े प्रहरियों को छलती
ऊँचे स्तम्भों पर वलभीयुत बनें रम्य प्रासाद वहाँ
धूप धूम सुरभित गृह जिनमें थी आलोक-शिखा जलती

स्वर्णकलश शोभित भवनों से, लगे हुए उद्यान बने
ऋतुप्रशस्त पथ बीच-बीच में कहीं लता के कुञ्ज घने
जिसमें दम्पति समुद विहरते, प्यार भरे दे गहबाहीं
गूँज रहे थे मधुप रसीले, मदिरा मोद पराग सने
देवदारु के वे प्रलम्ब भुज जिनमें उलझी वायु तरङ्ग
मुखरित आभूषण से कलरव करते सुन्दर बाल विहङ्ग
आश्रय देता वेणु-वनों से निकली स्वर लहरी ध्वनि को
नागकेसरों की क्यारी में अन्य सुमन हैं ये बहुरङ्ग
नव मडप में सिंहासन सम्मुख कितने ही मंच तहाँ
एक ओर रक्खे हैं सुन्दर मढ़े चर्म से सुखद वहाँ
आती है शैलेय अगुरु की धूमगंध आमोद भरी

(स्वप्न)

सौन्दर्य और सुचित्रण की इतनी कलापूर्ण एवं ऐश्वर्यमयी झाँकी दूसरे स्थान पर मिलना असंभव है। मिलेगी तो प्रसाद की ही 'स्वर्ग के खंडहर में' जैसी कुछ कहानियों में। स्पष्ट है कि भाषा, भाव, शैली की प्रौढ़ता और कुछ दार्शनिक संदेश की दृष्टि से आधुनिक ग्रंथों में 'कामायिनी' बेजोड़ है। तुलसी के मानस (१५७४ ई०) के बाद जीवन की विशद व्याख्या और नवीन जीवन के संदेश को सामने रखने वाला ग्रंथ अब तक नहीं आया। तुलसी ने मध्ययुग के धार्मिकता-प्रधान लोकजीवन को मर्यादा-मार्ग का संदेश दिया। रामभक्तिमय, मर्यादा-प्रधान, लोकजीवन के प्रति उत्तरदायी, वर्णाश्रम-संस्थानुकूल स्वस्थ जीवन तुलसी ने अपने समय की जनता के सामने रखा। यह जीवनादर्श मध्युग की हिंदू जनता के लिए चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण हो अब जीवन को नए सिरे से देखने और नये आदर्श गढ़ने की आवश्यकता है। हमारे समय में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गांधी, जवाहरलाल,

डा० इकबाल और प्रसाद ने इस ओर प्रयत्न किया है। लोकजीवन को नया मार्ग दिखलाने का श्रेय वांछनीय ही नही स्तुत्य है। इस स्थान पर इन सब मनीषियों की जीवन चिंता पर विचार करना सरल नही, परन्तु यह मानना अनुचित नही कि प्रसाद ने जीवन को अपने ढंग के देखा है और उसे एक महान् चिद्शक्ति के आनन्दनृत्य के रूप मे समझा है। प्रत्येक मनुष्य इस चिद्शक्ति का अंश है और उसमे विराट आनन्द के स्फुलिंग विद्यमान हैं। इन्ही को जगा कर विश्वात्मा के महासंगीत में योग देना ही मनुष्य जीवन की पूर्णता है। परन्तु यह कैसे हो—प्रसाद कहते हैं देवताओ का जीवन लक्ष्य उच्छृंखल विकासजन्य आनन्द था, इसी से देवता नाश को प्राप्त हुए। मनु (मनुष्य-मन) ने अपने लिए बड़ी असफलताओं के बाद एक जीवन लक्ष्य खोज निकाला है—वह है श्रद्धा-बुद्धि (भाव-ज्ञान)—समन्वित कर्म द्वारा आनन्द की साधना। भाव-ज्ञान-कर्म जहाँ एक बिंदु पर आ जाते हैं, वहीं आनंद की गत स्वतः बजने लगती है। आधुनिक मानव के लिए यह प्रसाद का सार्वभौम संदेश है। इस संदेश की उपयोगिता यही है कि यह वर्ग-जाति-राष्ट्र विशेष के लिए न होकर मनुष्यमात्र के लिए है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर औपनैषिदिक सरल जीवन और अंतर्राष्ट्रीयता के पक्षपाती है; गांधी जी सर्वोदय, चाहते है; जवाहरलाल विज्ञानमय समाजवाद और राष्ट्रीयता पर आश्रित अंतर्राष्ट्रीयता की आवाज उठाते है। इकबाल ने मनुष्य की मौलिक स्वतंत्रता और विज्ञान को सामाजिकता को अपना संदेश बनाया है। प्रसाद भी इसी श्रेणी के चिंतक है। उनका दृष्टिकोण इकबाल और नेहरू के दृष्टिकोणो से भिन्न है। गांधीजी के नज़दीक पड़ता है। वे विज्ञानमयी बुद्धिप्रधान सभ्यता को वर्ग-संघर्ष की जड़ बताते हैं और ज्ञानाश्रित श्रद्धामूलक वर्गहीन मानवता की ओर इंगित करते है।

[ ७ ]

'कामायिनी' का सारा ढाँचा महाकाव्य का है। एक उदात्त नायक की कथा है। प्रेम और उपेक्षा से भरी एक कहानी है। परन्तु कथा-सूत्रों का विकास नहीं हो पाया है। इसका कारण है कि प्रसाद ने कथा को मनोवैज्ञानिक रूपक बना दिया है। इससे कथा-प्रवाह में बाधा पड़ती है और जीवन पूरी तरह नहीं उतरता। महाकाव्य के आधार पर कथा को सर्गों मे विभाजित किया गया है और प्रत्येक सर्ग मे एक ही निश्चित छंद का प्रयोग है। प्रकृति के नग्न-तीव्र चित्र भी हैं। जल-प्रलय, वसंत, शिशिर, शरद्, नगर, युद्ध आदि अनेक महाकाव्य के उपकरण मिलेंगे। परन्तु फिर भी 'कामायिनी' महाकाव्य न होकर एक उत्कृष्ट स्वच्छंद कथा (रोमांस) मात्र रह जाती है। 'छायावाद काव्य' मूलतः मुक्तक रूप मे है। कथा बाँध कर काव्य का निर्माण Classical (मर्यादामय काव्य) का ढंग है। छायावाद की स्वच्छन्दतावादी धारा गीतों से भरी है और 'कामायिनी' की आत्मा भी गीति-प्रधान (Lyrical) है। उसका संदेश कितना ही महान् हो, अपनी विशिष्ट शैली के कारण यह महाकाव्य न होकर विशाल गीति-कथाकाव्य ( Lyrical narrative ) मात्र रह जाता है।

फिर कथा में कल्पना-चित्रों का इतना बाहुल्य है कि वह शुद्ध कथा-काव्यरस की प्राप्ति मे व्याघात उपस्थित करता है। छायावाद-काव्य कल्पना-प्रधान है, अतः कल्पना-चित्रों का अत्यंत प्राचुर्य। इसके अतिरिक्त कवि बीच-बीच में मानसिक प्रवृत्तियों के उद्घाटन (चिंता, काम, वासना, लज्जा) में लग जाता है और कथा बाट जोहती हुई ठहरी रहती है। रोमांस-काव्यों मे कथा के बीच मे अनेक अनर्गल बातें जुड़ी रहती हैं—यही प्रवृत्ति 'कामायिनी' मे भी दिखलाई पड़ती है।

यह सब त्रुटियाँ होने पर भी 'कामायिनी' का आधुनिक काव्य मे अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान रहेगा। १६१३—३६ के काव्य की जो-जो विशेषताएँ है, वह इस एक ग्रंथ में गुंफित मिलेंगी। छायावाद काव्य की शक्ति और दुर्बलता का एक साथ प्रदर्शन यहाँ हुआ है। कल्पना-चित्रों की नवीनता और उत्कृष्टता, सहज सहानुभूति, विराट् मानवीयता, रूपचित्रण, प्रकृतिप्रेम, व्यंजना-प्रधान शैली—यह सब विशेषताएँ "छायावाद" से संबद्ध है। अस्पष्टता, संस्कृत-गर्भता, सूक्ष्म तत्त्वों की ओर दृष्टि, कल्पनातिरेक—ये कुछ त्रुटियाँ भी है। परन्तु प्रत्येक युग के काव्य की अपनी सीमाएँ होती हैं। प्रसाद की 'कामायिनी' का महत्त्व यह है कि वह एक युग के काव्य (छायावाद) का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानस और सूरसागर मध्ययुग को रामभक्ति और कृष्ण-भक्ति-धाराओं का प्रतिनिधित्व करते है या बिहारी रीतिकाल की प्रेम-विलासमयी चुहलों का चित्र उपस्थित करते है। आज के बुद्धिजीवी, विश्लेषण-प्रधान, सौन्दर्यप्रिय दार्शनिक मन को 'कामायिनी' संतुष्ट कर सकेगी, इसमे कोई संदेह नही। आज जब काव्य का रूप बदल रहा है और जीवन के प्रति हम नए प्रकार से जागरूक हो उठे है, तो पिछली पीढ़ी की काव्य-संपदा के यथार्थ मूल्यांकन से ही हम आगे बढ़ सकेंगे।

---

## ८

# 'कामायिनी' [ ख ]

'कामायिनी' : एक परिचय की भूमिका में सुश्रीमहादेवी वर्मा ने 'कामायिनी' का मूल्यांकन इस प्रकार किया है—'कामायिनी तत्त्वतः समझने के लिये यह जान लेना उचित है कि छायावाद युग की सबसे सुन्दर सृष्टि होने पर भी और रहस्य-भावना के वैतालिक की कृति होने पर भी कामायिनी का लक्ष्य न अरूप की छाया है, न निराकार का रहस्य। उसमें जो कुछ रहस्य है वह मानव-प्रकृति की ऐसी रहस्यात्मकता है जिससे मनुष्य, मनुष्य के नाते छुटकारा पा ही नहीं सकता। उसके सांकेतिक अर्थ के सबंध में प्रसादजी स्वयम् कहते हैं—"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास मे रूपक का अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिये मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करे तो मुझे आपत्ति नहीं अतः सांकेतिक अर्थ यथार्थता से सर्वथा स्वतंत्र है ऐसा मान लेना बहुत उचित नही जान पड़ता। प्राधान्य तो उस व्यक्ति का रहेगा जिसका इतिहास हमारे वेद से लेकर पुराणों तक और भारत से लेकर सुदूर पाश्चात्य देशों तक बिखरा हुआ है। हमारे यहाँ साधारण पाठक और आलोचक या तो इस प्राचीन इतिवृत्त से इतने परिचित नहीं या इतने संशयालु है कि इसे एक अधूरे सांकेतिक अर्थ में ग्रहण कर लेना स्वाभाविक हो जाता है। कहना व्यर्थ होगा कि इस प्रवृत्ति ने 'कामायिनी' को सम्पूर्ण सजीवता के साथ ग्रहण करने मे कोई सहायता न देकर बाधा ही पहुँचाई,

क्योंकि उसकी सांकेतिकता का आधार नष्ट करके उसकी प्रेरणा को मूलतः समझना सहज नहीं रह जाता।"

इस व्याख्या में कवियित्री ने 'कामायिनी' के अध्ययन की दो अलग-अलग रूपरेखाएँ स्थिर की हैं। मनु ऐतिहासिक व्यक्ति है। कामायिनी में हम मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय मे तर्क और विश्वास के अंतर्द्वन्द या संघर्ष का चित्रण पाते हैं। मनु आदि पुरुष है। कामायिनी आदि नारी। आदि पुरुष और आद्या के मनोविकास का चित्रण कामायिनी की विशेषता हैं, अतः इस दृष्टि से वह ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक काव्य है। आदि पुरुष और आदि नारी की कहानी इतनी उलझी नहीं होना चाहिये जितनी बाद के युगों की कहानी। इसी से 'कामायिनी' में कथाविस्तार का आग्रह नही है। सारी कथा मे मूलरूप से दो ही चरित्र उभर कर आते है। मनु और श्रद्धा। मनुष्य के उद्दाम अंतर्द्वन्द और श्रद्धा के शांत आत्मविश्वास के घात-प्रतिघात को प्रसाद ने महाकाव्य का रूप दे दिया है। विचाराक्रांत मनु शांतिमूर्ति श्रद्धा की ओर आकर्पित होते है, परन्तु श्रद्धा के आत्मसमर्पण के बाद उनके हृदय में कर्म की भयकर वात्या बहने लगती है और इस आँधी मे वह उड जाते हैं। श्रद्धा के प्रशांत आत्मविश्वास से उन्हे धक्का लगता है और वह उनके स्नेह-बंधन को तोड़ डालते है। परन्तु अंत मे इड़ा के चक्र मे पडने पर इन्हे कर्म की आँधी की असारता का पता चलता है और श्रद्धा ही उनकी मार्ग-प्रदर्शिनी बनती है। वह मानव की जाया जो है।

'कामायिनी' की विशेपता यही है कि वह नए युग की सारी प्रवृत्तियों को आत्मसात किये है। मध्ययुग के देव-चरित्रों मे हमें श्रद्धा नहीं है, लौकिक दिव्य कथाएँ हमारे लिये अगम्य हैं। उपन्यास-कहानी में हम प्रतिदिन के परिचित व्यक्तियों के संपर्क

में आते हैं। इसीलिये प्रसाद ने 'कामायिनी' में नया पथ पकड़ा है। उन्होंने 'कामायिनी' में स्वयं मनुष्य की प्रकृति का विवेचन किया है, आदिम काल से मनुष्य की प्रकृति का एक ही प्रकार से विकास होता गया है। इसी विकास की रूपरेखाएं प्रसाद के काव्य का प्राण हैं। महादेवी के शब्दों मे : "हमारे सामने जो क्षितिज है, वह किसी लोक-विश्रुत या अलौकिक चरित्र की दिग्विजय यात्रा नहीं चित्रित करता, प्रत्युत उसके सब हलके गहरे रंग, सारी लघु दीर्घ रेखाएँ दो व्यक्तियों को स्पष्ट करती रहती है और ये दो व्यक्तित्व हैं—आदिम पुरुष और आदि नारी। अतः उनमें अलौकिकता से अधिक उन प्रवृत्तियों का महत्त्व है जिनसे लोक का निर्माण संभव हो सका। इस दृष्टि से उनकी यह चारित्रिक विशेषताएँ आज भी हमारी है।" अतः कामायिनी का यह दूसरा तथ्य—मनोवैज्ञानिक तथ्य—ऐतिहासिक तथ्य से अधिक सजीव एवं अधिक महत्त्वपूर्ण है। 'कामायिनी' का नायक मनु पूर्ण रूप से व्यक्तिवादी है। वह अकेला है। कहता है—

शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल सका नहीं जो कि हिम खंड
दौड़ कर मिला न जलनिधि अक
आह वैसा ही हूँ पाषड

आजकल के अहंवादी मानव की तरह वह कहता है—

विश्व में जो सकल सुन्दर हो विभूति महान
सभी मेरी हैं सभी करती रहें प्रतिदान
यही तो मै ज्वलित वाड़व-वह्नि नित्य अशात
सिंधु-लहरों सा करे शीतल मुझे सब शात

वही मनु 'विश्ववादी' बन कर कथा समाप्त करते हैं—

सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख-संसृति है,
अपना ही अणु अणु कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है
सब भेदभाव भुलवा कर
सुख-दुःख को दृश्य बनाता
मानव कह रे "यह मैं हूँ"
यह विश्व नीड़ बन जाता !

कथा के अंत मे हम प्रसाद को बुद्धिवाद के अटल विरोधी के रूप में देखते हैं। आधुनिक युग बुद्धिवाद का युग है। इसके विपरीत प्रसाद मनु (मानव) को इड़ा (बुद्धि) के प्रति जुगुप्सा से भर देते हैं। सरस्वती-तट पर जब एक गुफा में मनु दूसरी बार मिलता है, तो श्रद्धा से यही कहता है—

यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप-पुण्य जिसमें जल-जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञानलेश
समरस अखंड आनन्द वेश

अंत में जब श्रद्धा के संकेत से ज्ञान, कर्म और भाव की तीन विभिन्न मूर्तियाँ एकाकार हो जाती हैं—

वे संबद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमे

तब एक अभिनव सृष्टि का जन्म होता है। त्रिपुरदाह का यही आधुनिक अर्थ है। 'कामायिनी' की मूर्त्तभाषा में ज्ञान, भाव और कर्म के त्रैत का त्रिपुरदाह इस प्रकार है—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे

परन्तु समाप्ति यहीं नहीं होती। ज्ञान, भाव, कर्म के मिलन से दिव्य आनन्द-लहरी बहने लगती है। तन्त्रों में श्रद्धा द्वारा त्रिपुरों के मिलने का वर्णन है, यथा

त्रिपुरानन्तशक्त्यैक्यरूपिणी सर्वसाक्षिणी।

इसी अनंत शक्तिणी श्रद्धा की स्मिति द्वारा प्रसाद ने ज्ञान, कर्म और भाव में समरसता उत्पन्न करने का संदेश दिया है। परन्तु यह समरसता स्वयं साध्य नहीं है। यह तो आनन्द की जाया है। इसी लिये कहा गया है—

जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मयोः।

इसी अद्वैतानन्द—चिदानंद—को प्रसाद ने 'तन्मय' शब्द में अभिव्यक्त किया है। स्वयं विराट् चिद्सत्ता का भी एक चित्र 'कामायिनी' में है। इड़ा जब कुमार को लेकर श्रद्धा और मनु की तपभूमि (अब आनन्द-भूमि) में पहुँचती है, तो वह देखती है सनातन पुरुष और आदि शक्ति प्रकृति का महाविलास :

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगायित था
आनद-अंबु-निधि शोभन!

इस प्रकार कामायिनी कथा महासमाधि के चिदानंद में विराम पाती है। प्रसाद ने जीवन का एक अत्यंत संतुलित चित्र उपस्थित

करते हुए ज्ञान, कर्म, भाव की समन्वयात्मक साधना द्वारा प्राप्त महानंद की ओर इंगित किया है। हृदय और बुद्धि का परिहार आनंद की अनुभूति मे ही सभव है।

'कामायिनी' में प्रसाद ने शाश्वत मानवताके विकास का चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। सार्वभौम कल्याण भावना से प्रेरित हो वह देश-काल वर्गहारा मानव के लिये एक नई सभ्यता, नई संस्कृति, नये दर्शन का सकेत देने चले हैं। जीवन का मौलिक अन्वेषण और विश्लेषण कामायिनी की सबसे बड़ी देन है। अमर मानसिक तत्त्वों के सूत्रों को समेट बटोर कर भावी मानव के मगलसूत्र में गूँथ दिया गया है। चिंता, आशा, ईर्ष्या, क्षमा, जैसे मनोभाव मानस को जिस विकास-पथ पर त्रिकाल तक आगे बढ़ाते रहेंगे, 'कामायिनी' मे उन्ही की सुन्दरतम व्याख्या है। यह संभव नही कि 'कामायिनी' रामचरितमानस की भाँति जन-साधारण की चीज़ हो सके। परन्तु केवल इसी एक बात से वह छोटी नही हो जाती। साहित्य की अनेक अनुभूति इतनी उदात्त, इतनी सचेष्ट और इतनी रहस्यमय होती है, कि साधारण मानव-मन उनमे उलझ जाता है। परन्तु जन-संस्कार भी अभी कहाँ बने है! अभी तो हम जनता को जरा भी ऊँचा नही उठा सके है। जो हो, प्रतीकों की नवीनता और विचारो की गंभीरता के कारण ही कोई काव्य असफल नही हो जाता। प्रसाद जनता के कवि थे भी नहीं। वे संस्कृत हृदय मानव के कवि हैं। आवश्य-कता इस बात की है कि उनके सदेश को सरल भाषा में आधुनिक युग के सामने रखा जाये। यह अनिवार्य भी है। रामचरित-मानस जिस प्रकार एक विशेष युग का है, उसी प्रकार 'कामा-यिनी' एक विशेष युग की वस्तु है। वह आधुनिक युग की सारी चेतना को समेट कर चलती है, परन्तु परोक्ष रूप में नहीं। आधुनिक युग जीवन, समाज और राजनीति के संबन्ध मे

आविष्कारों का युग है। चारो ओर जिज्ञासा का एक भाव व्याप्त हो गया है। 'कामायिनी' में इसी जिज्ञासा का समाधान है।

अपने युग के अनुरूप 'कामायिनी' एक सुन्दर रचना है। युग की ध्वनि उनके इस काव्य में उस प्रकार नहीं सुनाई पड़ती, जितनी शक्ति से गांधीवादी या समाजवादी काव्य में, परन्तु कामायिनी की जिज्ञासा और उसका समाधान युग के आधार को ही लेकर चले हैं। जो लोग प्रसाद की दृढ़ चिंतन-भित्ति से परिचित नहीं हैं वे उनके "आनन्दवाद" को गये-गुजरे जमाने की चीज़ या मध्ययुग की कल्पना-ऐश्वर्य से सजाई मूर्तिमात्र समझ लेंगे। परन्तु प्रसाद का "आनन्दवाद" इतनी निर्बल नींवों पर नहीं खड़ा है। उसे एक चिंतन-प्रधान कवि-दृष्टि का सहारा है। आज के विछृंखल युग ने प्रसाद को उसी तरह जीवन सन्देश देने की प्रेरणा दी जिस तरह मध्ययुग की विलासी जनता और अकर्मण्य समाज ने तुलसी को रामसीता की आदर्श दांपत्य मूर्तियाँ और रामराज्य के मर्यादापूर्ण समाज की ओर प्रेरित किया था। उन्होंने 'श्रद्धा' के रूप में आजकल की नारी के सामने विज्ञानमयी श्रद्धात्मकता का आदर्श रखा है। जीवन मे सुख-शांति की बराबर दौड़ लगी है। पुरुष कहता है—

आकर्षण से भरा विश्व यह
केवल भोग्य हमारा

तब इस आदर्श नारी और पुरुष का संघर्ष उपस्थित हो जाता है। इस संघर्ष में विजयिनी होती है नारी। श्रद्धा के संबंध में 'प्रसाद' की ये पंक्तियाँ आधुनिक नारी के लिए चुनौती के समान हैं—

देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा

संघर्ष सदा उर अन्तर मे
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा !
आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधिपत्र लिखना होगा

जिस तरह श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में नारी को पुकार कहा था—

अबला जीवन ! हाय, तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी

इसी तरह प्रसाद भी नारी जीवन की स्वर्गीय पवित्रता को पुरुष के लिए एक महान् प्रसाद के रूप मे स्वीकार करते है। आजकल के व्यापक संघर्षों के चित्र प्रसाद इड़ा के सारस्वत नगर मे उपस्थित करते है—

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्याये गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकात नष्ट हो, बढे भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ, मिले अनिच्छित दुखद खेद

× × ×

पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता
तब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि
दुख देगी यह संकुचित दृष्टि

निरंतर वर्णों की सृष्टि से समाज-संघटन से अधिक विघटन की ओर ही बढ़ा है। अभिलषित वस्तु (एकता, सुख) का मिलना तो इस द्वैत-सृष्टि ने अनेक प्रकार के दुखपूर्ण भेद-प्रभेद उपस्थित

कर दिये। इसका फल यह हुआ कि मनुष्य की व्यापक दृष्टि सकुचित हो गई और देश-काल-वर्ग हीन मूल मानव देश, काल, वर्ग के बन्धनो में इतना जकड़ गया कि उसने जातीय और राष्ट्रीय संघर्षो का सूत्रपात कर दिया। जीवन का अर्थ है परिवर्तन। परन्तु हम रूढ़ परंपराओं मे ऐसे जकड़ गये कि इन बन्धनों से ही हमे मोह होने लगा। प्रसाद इस परंपरा, रूढ़ि और सनातन के प्रति अपनी विरोध की स्वस्थ वाणी उठाते है। वे कहते है—

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनद
किये हैं परिवर्तन मे टेक

अन्य स्थानों पर भी प्रसाद ने समाजगलित मानव के स्थान पर मूल मानव की अभ्यर्थना की है। उनका 'आनन्दवाद' दुर्बल मानव का पलायन नहीं है, कल्पना-स्वप्न नहीं है। वह स्वस्थ हृदय की मंगलाकांक्षा है। शक्ति के दर्प से ओत-प्रोत है। प्रसाद नए युग को संबोधन करते है—

और यह क्या सुनते नहीं
विधाता का मङ्गल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा जयगान

सारस्वत प्रदेश के बुद्धिवादी समाज मे हमारे अपने भौतिक युग का चित्र है। इस भौतिक युग की विशेषताएँ है—

(१) चिर चंचलता, चिर कर्मठता
देश काल का लाघव करते ये प्राणी चंचल से हैं

(२) ज्ञान-संपन्नता

वढ़े ज्ञान व्यवसाय परिश्रम बल की विस्तृत छाया में

(३) असंतोष

प्रजा क्षुब्ध हो शरण माँगती उधर खड़ी है
प्रकृति सतत आतंक-विकंपित घड़ी-घड़ी है

(४) मंत्रशक्ति और तद्जन्य ऐश्वर्य

प्रकृति शक्ति तुमने मन्त्रों से सबकी छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी

और

स्वर्ण-कलश-शोभित भवनों में लगे हुए उद्यान बने

(५) अनेक प्रकार के समाजगत भेद

वर्गों की खाई बन फैली
कभी नहीं जुड़ने को

(६) मनुष्य की अहंता

मैं शासक, मैं चिरस्वतन्त्र
मैं चिरबंधन-हीन

(७) अधिकारों की लड़ाई

अधिकारों की सृष्टि और
उनकी वह मोहमयी माया

(८) हिंसावाद

आज शक्ति को खेल खेलने को नर आतुर
सामूहिक बलि का था निकला पथ निराला
रुधिर भरी वेदियाँ भयकारी उनमें ज्वाला

इस प्रकार, हम देखते हैं कि प्रसाद ने अपने काव्य में युग की चेतना ही ग्रहण की है। हमारा समाज भौतिकता और विलास के रोगों से बुरी तरह ग्रसित है। स्वस्थ जीवन के सारे कार्य अवरुद्ध

हो गये हैं। मनु को भौतिक ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँच कर अधिकार माँगती हुई प्रजा का प्रताड़न करना पड़ा था। आज तो प्रत्येक देश में वर्गहीन प्रजा और समृद्ध शासक वर्ग मे युद्ध होता दिखलाई पड़ रहा है। मिल मज़दूरों की हड़तालें और किसानो के विद्रोह भौतिक सभ्यता के शाप के प्रतीक हैं। 'एक-घूँट' में 'प्रसाद' ने पहले पहल 'लौट चलो नैसर्गिकजीवन' की ओर आवाज़ उठाई थी। 'कामना' (नाटक) में उन्होने भौतिकवाद के जन्म, विकास एवं ह्रास की कथा कही थी। वहाँ पात्र की मनोवृत्तियाँ थीं। हम बता चुके है कि 'कामना' के समय के लगभग ही 'प्रसाद' ने 'कामायिनी' की रचना शुरू की। अतः जो संदेश 'एक घूँट' और 'कामना' में चलता है, वही अधिक शक्तिशाली ढंग से कामायिनी का विषय बना है। 'एक घूँट' मे 'प्रसाद' अरुणाचल जैसे तपोवन को ग्राम-जीवन और आधुनिक नगर-जीवन के बीच की चीज की तरह लाकर उपस्थित करते हैं। 'कामना' मे वह किसी भी समाधान की ओर नही बढ़ते। 'कामायिनी' में उनका चित्रपट विशाल था। उनकी दृष्टि सारे मानव समाज पर थी। पूर्व-पच्छिम सबके लिये एक ही संदेश का नियोजन उन्होंने किया। न उन्होंने विज्ञान को अस्वीकार किया, न ज्ञान को। वे एक महान् समन्वयवादी की भाँति परस्पर विरोधी तत्त्वों का समन्वय एवं समाहार करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

गांधीयुग के होते भी 'प्रसाद' गांधीजी से अधिक प्रगतिशील हैं। उन्होने गांधीजी की भाँति अपने उन्नत जीवन की नीव त्याग पर नहीं रखी है। वे न अतिमोदवादी हैं, न संत। उनका संदेश भी आध्यात्मिक नहीं है। इसी लिए ईश्वर, जीव, ब्रह्म जैसे अध्यात्मवादी शब्दों का 'कामायिनी' में नितांत अभाव है। प्रसाद वर्ण-जाति के एकांततः विरोधी हैं। वे तप नहीं,

आनन्द; ज्ञान और कर्म ही नहीं ज्ञान, कर्म, भाव तीनों के समाहार की ओर इंगित करते हैं। अवश्य ही गांधीजी की भाँति, उन्होंने भौतिकता को मनुष्य की सांस्कृतिक निष्ठा का विरोधी माना है, परन्तु यह इस कारण नहीं कि विज्ञान-वादी भौतिकता अपने मूल अर्थ मे अनिष्टकारी है। प्रसाद का विचार है कि इसका कारण मन, बुद्धि और हृदय का असंतुलन है। वे गांधीजी के रामराज्य के स्वप्नों में और आगे बढ़कर 'आनन्द लोक' का स्वप्न देखते हैं। यों दोनो प्रेम (काम) और कामायिनी (श्रद्धा) को ही मानसतत्त्वों में सर्वश्रेष्ठ और मानवता के लिए कल्याणकारी समझते हैं। प्रेम के निर्माणकारी तत्त्वों का चित्रण प्रसाद ने बड़े उत्साह से किया है—

प्रत्येक नाश विश्लेषण भी
संश्लिष्ठ हुए, बन सृष्टि रही
ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था
मादक मरद की वृष्टि रही
भुजलता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए
जलनिधि का अचंल व्यजन बना
धरणी का दो-दो साथ हुए
कोरक अंकुर सा जन्म रहा
हम दोनों साथी भूल चले
उस नवल सर्ग के कानन में
मृदु मलयानिल से फूल चले

इसी प्रेम के आनन्द में साधक पंच ज्ञानेन्द्रियों के सभी विषयों—रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द—का पान करता है :

पीता हूँ, हाँ मै पीता हूँ
यह स्पर्श, रूप, रस, गंध भरा
मृदु लहरों के टकराने से
ध्वनि में है क्या गुञ्जार भरा !

इस तरह 'प्रसाद' मध्ययुग भारतीय काव्य साहित्य की सारी परंपरा से दूर पड़ कर तंत्र-साहित्य और शैवागमो के आधार पर एक नये जीवनतत्त्व को उपस्थित करते है। सिद्धो और संतों ने सहज मार्ग का संदेश दिया था। संत ज्ञानवादी थे। सिद्धो ने उनके पूर्व जो आनन्द की धारा वहाई थी, उसे संतों ने तप और ज्ञान के युग-कूलो में बाँध दिया। 'प्रसाद' ने 'रहस्यवाद' निबंध मे अपना संबंध सिद्ध-साहित्य से जोड़ा है। वे कहते है—'सिद्धोने आगम के बाद रहस्यवाद की धारा अपनी प्रचलित भाषा मे जिसे वे संध्या-भापा कहते थे, अविच्छिन्न रक्खी और सहज आनन्द के उपासक बने रहे।

अनुभव सहज सा मोल रे जोई
चोकोट्टि विभुका जह्ओ तहसो होई
जहषने आछिले स वहसन अच्छ
सहज पथिक जोई भान्ति माहो वास
(नारोपा)

वे शैवागम की अनुकृति ही नही, शिव की योगेश्वर मूर्ति की भावना भी आरोपित करते थे :

नाडि शक्ति हिय धरिय खदे
अनहा डमरू वाजए वीरनादे
कह्न कपाली योगी पइठ अचारे
देह न अरी विछाए एकारे
(कराहपा)

इन आगमानुयायी सिद्धों में आत्म-अनुभूति सापेक्ष थी। परोक्ष विरह उनके समीप न था। वह प्रेम-कथा स्वपर्यवसित थी।" "सिद्धों ने आनन्द के लिए संगीत को भी अपनी उपासना" में मिला लिया था। परन्तु 'प्रसाद' सिद्धकाव्य और सिद्धसाधना के विकृत रूप से भी परिचित हैं। वह जानते है कि सिद्धों के सहजानंद के पीछे, बौद्धिक गुप्त कर्मकांड की व्यवस्था भयानक हो चली थी। 'प्रसाद' के अनुसार उनके आनन्दवाद' का पहला उद्वेग ऋग्वेद में 'मिलता है। इन्द्र इस आनन्दवादी साधना के आदि प्रवर्तक है। अद्वैतभक्ति के रूप में शैवों ने इसी आनन्दवाद को स्वीकार किया। तंत्र-साहित्य, शक्ति साहित्य, आगम-सहित्य और कालिदास-प्रभृति कवियो में इस आनन्दवाद के मुख्य स्रोत मिलेंगे। स्वयं भागवत और वैष्णव साहित्य ने अद्वैतभक्ति के रूप में इस आनन्दवाद को स्वीकार किया, परन्तु वाद को विरह और द्वैत-भावना के सुर इसमे मिल गये। कवि राधाकृष्ण के विरह का रूपक रचने लगे और संत 'राम की बहुरिया' से 'सुन्न महल' में मिलने की आकुल प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार एक ओर कृष्ण-कवियों की विरह-भावना, तुलसी के मर्यादा भाव एवं संतों की ज्ञानमण्डता ने आनन्दवाद की धारा-प्रवाह में बाधा डाली, तो दूसरी ओर मिथ्या रहस्यवादी और मिथ्या आनन्दवादी इसे कुत्सित अनाचार बताने लगे। सूफी, संत और कृष्ण-कवियों का प्रेम, मिलन की प्रतीक्षा मे, सदैव विरहोन्मुख रहा। कवि 'वृन्दावन' ही बन सके श्याम नहीं। यह प्रेम का रहस्यवाद विरह दुःख से अधिक अभिभूत रहा। यद्यपि कुछ लोगों ने सहज आनन्द की योजना भी की थी। और उसमें माधुर्य महाभाव के उज्ज्वल नीलमणि कोपरकीय प्रेम के कारण गोप्य और रहस्यमूलक बनाने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु द्वैतमूलक होने के कारण तथा बाह्य आचरण में बुद्धिवादी होने से यह विषय में साहित्यिक

ही अधिक रहा। निर्गुण सम्प्रदाय वाले संतों ने भी राम की बहुरिया बनकर प्रेम और विरह की कल्पना कर ली थी, किंतु सिद्धों की रहस्य-संप्रदाय की परंपरा में तुकनगिरि और रसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी मे आनन्द और अद्वयता की धारा बहाते रहे। वह वर्तमान हिन्दी काव्य की रहस्यवादी धारा का संबंध इसी आनंदवादी धारा से जोड़ते हैं। "वर्तमान हिंदी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यजना होने लगी है; वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है।"

प्रसाद के इस वक्तव्य से हमें उनके काव्य के संबंध में एक नई दिशा का पता चलता है। अत: उनके सारे काव्य को इस नई वीथिका में रखकर देखना पड़ता है। वह वीथिका है आनंदवाद की व्याख्या, उसकी साधना और साहित्य की परंपरा। सिद्धों के समय से आनंदवाद के काव्य की एक धारा हिंदी मे चली आ रही है। इस धारा के कवियो और साधको ने अनेक छंदो और अनेक रूपो में अपने काव्य को व्यक्त किया है और संत और भक्त-साहित्य इससे बराबर प्रभावित होते रहे है। धीरे-धीरे इस आनंदवादी धारा का साहित्यिक महत्त्व नष्ट हो गया और तुकनगिरि और रसालगिरि जैसे अज्ञात कवि असाहित्यिक लोकछन्दो (लावनी, गजल, कव्वाली आदि) मे इसमें थोड़ा बहुत योग देते रहे। प्रसाद का अपना काव्य इसी आनन्दवादी धारा का वर्तमान संस्करण है। इसमें 'कामायिनी' सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

तब 'कामायिनी' की मूल प्रेरणा के लिये हमे बहुत पीछे आगमों, तंत्रों और आन्दवादी गीतो-प्रगीतो तक जाना पड़ेगा। तभी हम प्रसाद की इस कृति का महत्त्व समझ सकेंगे। हमारे साहित्य और हमारी साधना के एक लुप्तप्राय अंग को भावुक प्रसाद ने

सारी साहित्यिक सचाई के साथ उभार कर हमारे सामने रखा है। इसमें कितना अंश उनका है, कितना प्राचीन आगमकारों और आनन्दवादियों का, यह कहना कठिन है, परंतु प्रसाद की 'कामायिनी' हमारी साधना को एक नया मार्ग बताती है और एक नये जीवन संदेश से हमें स्पंदित करती है।

---

९

# प्रसाद के काव्य और उनकी कला का अध्ययन

'प्रसाद' की कविता के विकास का इतिहास आधुनिक हिन्दी काव्य के छायावादी स्कूल के विकास का इतिहास है। अतः नई कविता की प्रवृत्तियाँ समझने के लिए प्रसाद के काव्य और उनकी कला का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के अध्ययन के संबंध में कई कठिनाइयाँ भी हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि प्रसाद का काव्य ब्रजभाषा से शुरू होकर द्विवेदीयुग की काव्य-धारा से प्रभावित होता हुआ नये युग की ओर बढ़ता है। प्रारंभिक काव्य में ब्रजकाव्य और सामयिक खड़ी बोली काव्य का प्रभाव विशेष रूप से अंकित है। उसमें हमें प्रसाद की नई प्रवृत्तियाँ, नई छायावादी दिशाओं का अध्ययन करने योग्य सामग्री तो मिल जायगी। परन्तु जिसे हम 'प्रसाद का वैशिष्ट्य' या 'प्रसाद का काव्य' कहेंगे, वह वस्तु इन रचनाओं में अलभ्य है। वास्तव में प्रसाद का व्यक्तित्व पहली बार 'आँसू' (१९२५) में स्पष्ट रूप से हमारे सामने आता है। अतः प्रसाद के काव्य और कला के अध्ययन के लिए १९२५ से १९३६ के काव्य को ही हमें आधार बनाना पड़ेगा। इस सारे काव्य में उनकी तीन रचनाएँ ही हमें उपलब्ध हैं—आँसू (१९२५, १९३१) लहर (द्वि० १९४४) और कामायनी (१९३६)। प्रसाद के अध्ययन के लिए इन्हीं तीन ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन होना आवश्यक है।

परन्तु यहाँ पहुँच कर एक नई कठिनाई उपस्थित होती है। 'आँसू' के संबंध में यह कठिनाई विशेष रूप से है। १९२५ के 'आँसू' को प्रसाद ने दो-तीन बार सँवार कर नया रूप दे दिया है। अपने परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप में पहले संस्करण से बहुत भिन्न है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए हमने अंतिम रूप ही लिया है, अतः अंतिम संस्करण।

नीचे हम भिन्न-भिन्न शीर्षकों के साथ प्रसाद के काव्य और कला पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे—

## १—व्यक्तित्व

प्रसाद का व्यक्तित्व उनके काव्य में पूर्णतयः प्रतिबिंबित है। जो प्रसाद को जानते हैं, वे उनके व्यक्तित्व के सम्मोहन से परिचित है, रसरूप में प्रसाद को उन्होंने ग्रहण किया है। वे कहते है, प्रसाद का काव्य उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिबिंब है। नंददुलारे बाजपेयी ने 'जयशंकरप्रसाद' में 'व्यक्तित्व की झलक' शीर्षक लेख में प्रसाद के व्यक्तित्व का रेखा-चित्र उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

ठिगना कद, गेहुआँ रंग, गले में रेशमी कुरता और रेशमी दुशाला। ऊँचा ललाट। होठों में मद हँसी। आँखों में मादकता की लाली। स्निग्ध-स्वच्छ व्यवहार। प्रसाद का प्रारंभिक जीवन चाहे ऐश्वर्य, प्रेम और विलास की जिस चुहल में कटा हो, प्रसिद्धि के बाद से वह हमारे सामने सुन्दर संयमित रूप में आते है। काशी के प्रतिष्ठित सुँघनी साहू के घराने के एकमात्र रत्न व रह गये हैं। कुटुम्ब का सारा मानापमान, दुःख-सुख ओढ़ कर अपने व्यवसाय को बढ़ा कर ऋणमुक्त होने में उन्होंने कितनी शक्ति लगाई। परन्तु फिर भी साहित्यिकों और रसिक मित्रों के लिए वे सहज सुगम रहे, यह क्या कम बात है। दालमंडी में

१६वीं शताब्दी में हिन्दी कवि सामन्तों, राजा-महाराजाओं और आश्रयदाता सेठों के दरबार से निकल कर सामान्य जनता के पास आया। कवि-सम्मेलन, प्रेस, पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशन की सुविधाएँ—इन नई बातों ने काव्य को सामाजिक भूमि से हटा कर व्यक्तिवादी बना दिया। जहाँ सामन्तशाही थी, वहाँ व्यक्ति की क्या महानता थी। अब इन नए आन्दोलनों के फलस्वरूप व्यक्ति की आत्मा मुक्त हो गई। द्विवेदीयुग आर्य समाजी युग भी था। उस युग में आचार-नियमन एवं सामाजिकता की प्रधानता थी। व्यक्ति को निषेधों के बंधन ने जकड़ लिया था। नए काव्य (छायावाद) ने इस बंधन का विरोध किया। कवि ने बंधनों को तोड़कर एक बंधनहारा चिंतना एवं उत्तेजना का अनुभव किया। प्रकृति, मनुष्य, सुख-दुःख, जीवन, सब के साथ एकात्म होकर, बाह्य जगत् में स्वयं निष्ठ हो जब नया कवि हमारे सामने आया, तब हमें तो वह इतना नया-नया लगा कि हम उसका विरोध कर उठे। उसे 'छाप' का आग्रह नहीं था। जो कुछ वह लिखता था, वह अन्य से भिन्न होता था। छाप के बिना भी उसका व्यक्तित्व पहचान में आ सकता था। अतः नए छायावादी काव्य में व्यक्ति का निजी स्वर पहली बार काव्य में स्वतंत्र होकर बोला। यही इस नये काव्य की शक्ति थी। कविता कवियों के लिए आत्मा की प्रिय वस्तु बन गई। कवि-कर्म व्यक्तिगत साधना हो गया। कवियों ने अपना भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व विकसित करने की बड़ी चेष्टा की। वे सफल भी हुईं।

प्रसाद का काव्य उनकी अपनी निजी साधना से शक्ति प्राप्त करता है, इसी से व्यक्तित्व भी। प्रसाद का ऐश्वर्य उनका विलासमय भ्रूभङ्ग, उनकी जीवन-मृत्यु के आरपार देखने वाली अंतर्दृष्टि, उनका आनन्द, उनकी चुहलें, फिर उनकी गुरु-गंभीरता, ये सब विषय प्रसाद के व्यक्तित्व से ही उद्‌त्तीर्ण हुए हैं।

इस व्यक्तित्व को समझे और सुलझाये बगैर हम 'आँसू', 'लहर' और 'कामायिनी' को अस्पष्ट, रहस्यवादी या छायावादी ही कह सकेंगे।

## २—कल्पना

प्रसाद के काव्य में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहीं-कहीं कल्पना-बाहुल्य के कारण कवि अपना संतुलन तक खो बैठता है। साधारण पाठक अधिकांश कल्पना चित्रों को ग्रहण ही नहीं कर सकता। द्विवेदीयुग के काव्य मे कल्पना लांछित थी। बँधी-सधी उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ। अधिकतर यह भी नहीं। केवल वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक छन्दोवद्ध विचार या भाव। इसी से द्विवेदीयुग के पाठकों और कवियों को छायावादी काव्य भूत की तरह भयंकर लगा।

परन्तु १६२५ में प्रसाद ने 'आँसू' के साथ काव्य का एक नया रूप ही जनता के सामने रख दिया। 'आँसू' का भव्य प्रासाद कल्पना के आधार पर ही खड़ा था। कवि की कल्पना ने पृथ्वी से उठकर आकाश को छू लिया और उसके बाहर भी घूम आई। कवि कहने लगा—

बुलबुले सिंधु के फूटे
नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ मुक्त-कुन्तला, धरणी
दिखलाई देती लूटी

इसमें कवि ने विश्व में दुःख की असीम व्यापकता दिखलाई हैं। सिंधु दुखी है, ये बुलबुले उसके हृदय के छाले हैं जो फूट गये हैं। तारे टूट-से रहे हैं। आकाश मुक्तकुंतला नारी की तरह पागल है। पृथ्वी की श्री जैसे लुट गई हो। इस प्रकार के व्यंजक भावों को कवि ने स्वच्छंद भावों के सहारे मूर्ति-

मान करने की चेष्टा की है। वह कितना सफल है, यह दूसरी बात है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उसने कल्पना के बंधन खोल दिये है और वह मुक्त गगन में विहार करने लगी है। प्रेयसी की हँसी के लिए कवि प्रसिद्ध उपमानों को लेते हुए भी एक नया वातावरण बनाने में संलग्न है। वह कहता है—

विकसित सरसिज-बन-वैभव
मधु-ऊषा के अंचल मे
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल मे

हसी के साथ उसके मन में प्रभातकालीन सरोवर का चित्र आ जाता है जो सद्यः विकसित कमलों से भरा हुआ है। प्रेमी के लिए प्रेम ही ध्रुव है। परन्तु कवि इतनी सी बात कहकर नहीं रह जाता। वह एक विराट् चित्र की कल्पना करके ही संतुष्ट होता है—

मेरे जीवन का जलनिधि
बन अंधकार ऊर्मिल हो
आकाश-दीप-सा तब वह
तेरा प्रकाश झिलमिल हो

यहाँ निराशा के अधकार सागर की कल्पना की गई है जिसमें बरावर तरगें भी उठ रही है। परन्तु ये कल्पना-चित्र तो पाठक की पहुँच से बाहर नहीं है। अस्पष्ट, रहस्यमय चित्र वे है जहाँ कवि स्वयं प्रकृति के सूक्ष्म भावचित्रों के सहारे आगे बढ़ता है, जहाँ वह कहता है—

निश्वास मलय में मिलकर
छायापथ छू आयेगा

यहाँ निश्वास, मलय और छायापथ तीनों सूक्ष्म भावचित्र मात्र है, अतः क्रियाओं का चित्र ठीक नहीं उतरता। इस प्रकार की

कल्पना काव्यरस के ग्रहण में बाधित होती है। और कहीं-कहीं तो कवि की कल्पना निर्बंध हो मुक्त विहार करने लगती है—

चमकूँगा धूलि कणों में
सौरभ हो उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो
ग्रहपथ में टकराऊँगा

इस प्रकार के साहसिक, कल्पनातिरेक-पूर्ण चित्रों ने छायावाद के विरुद्ध जनता में एक दृढ़ भावना भर दी। नया काव्य अकर्मण्य कवियों का अमूर्त्त, अस्पष्ट दिवास्वप्न समझा जाने लगा।

कल्पनातिरेक के कारण ही कवि अत्यंत सूक्ष्म रह गया। वह एकदम अमूर्त्त वस्तुओं की ओर गया। वह 'मानस की गहराई' को भी मूर्त्त मानकर उससे वार्तालाप करने लगा—

ओ री मानस की गहराई

परन्तु यहाँ साधारण मस्तिष्क बहुत दूर जा पड़ता है। यह नहीं कि 'प्रसाद' के काव्य में शांत, संयमित कल्पना-चित्र है ही नहीं। कवि पेशोला के गत गौरव का वर्णन करता हुआ लिखता है—

आज भी पेशोला के
तरल-जल-मण्डलों में
वही शब्द घूमता-सा
गूँजता विकल है
किन्तु वह ध्वनि कहाँ?
गौरव की छाया पड़ी
माया है प्रताप की
वही मेवाड़
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ?

(पेशोला की प्रतिध्वनि)

इस प्रकार की संवेदनाशील कविता प्रत्येक पाठक की पकड़ में आ सकती है। जहाँ कल्पना-मूर्ति अनेक चित्रों में उलझकर अस्पष्ट हो जाती है, वहीं वह रसोद्रेक में बाधा पहुँचाती है। परन्तु कहीं-कहीं संयम में बद्ध हो यही कल्पना 'प्रसाद' के काव्य को शक्तिशाली भी बना देती है। मनु इड़ा से कहते हैं—

नहीं पा सका हूँ मैं जैसे
जो तुम देना चाह रहीं
क्षुद्र पात्र, तुम उसमें कितनी
मधु-धारा हो ढाल रहीं

यहाँ कवि की कल्पना एक विचार को उपमा द्वारा सहज ही मूर्त्त कर देने में सफल हुई। कल्पना का सर्वश्रेष्ठ विलास 'लज्जा' सर्ग में मिलेगा। कवि लज्जा द्वारा जो कहलाता है, वह भाषा द्वारा समेटा नहीं जा सकता। लज्जा कहती है—

इतना न चमत्कृत हो बाले
अपने मन का उपकार करो
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो, कुछ सोच विचार करो
अंबर-चुम्बी हिम-शृंगों से
कलरव कोलाहल साथ लिये
विद्युत की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये
मङ्गल कुंकुम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा की लाली
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली

हो नयनों का कल्याण बना
आनंद सुमन-सा विकसा हो
वासंती के वन वैभव मे
जिसका पंचम स्वर पिक सा हो, इत्यादि

इतनी सूक्ष्म कल्पना के सहारे भावों को आगे बढ़ाने के लिए 'प्रसाद' जैसी कुशल लेखनी ही चाहिये। परन्तु यह नहीं कि 'प्रसाद' सौन्दर्य के 'हाथीदाँत' के टुकड़े पर पच्चीकारी मात्र कर लेते हो, उनकी कल्पना उदात्त भावा को विराट चित्रपट पर उतार लाने मे भी सफल है। जीवन की रहस्यमयता का चित्रण करते हुए वे लिखते है—

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा प्रवाह-सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर
ले साथ विकल परमाणु पुञ्ज नभ, अनिल अनल क्षिति और नीर
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन
प्राणी कटुता को बँट रहा जगती को करता अधिक दीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
सघर्ष कर रहा सा जब से, सब से विराग, सब पर ममता
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर ?

इस प्रकार के कल्पना-विलास से 'प्रसाद' का सारा काव्य भरा पड़ा है।

## ३—सौन्दर्य : मानव

'प्रसाद' का अधिकांश काव्य मनोवैज्ञानिक भित्ति पर खड़ा है। वह अशरीरी और अमूर्त्त भावों और विचारो के कवि है। 'आँसू' प्रेम-काव्य है। वहाँ जो सौन्दर्य का वर्णन हुआ है,

उसमें प्रेमिका का नखशिख भी है, परन्तु उसमें अंगो का वर्णन-मात्र न होकर कल्पना-विलास है। शुद्ध मानव-सौन्दर्य के चित्रण का प्रयत्न 'कामायिनी' मे हुआ है जहाँ हमे मनु, श्रद्धा और इड़ा तीनों के चित्र मिलते है। चिंतित मनु का वर्णन इस प्रकार है—

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा
साधन करता सुरश्मशान
नीचे प्रलयसिंधु लहरो का
होता था सकरुण अवसान
उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारु दो चार खड़े
हुए हिम धवल जैसे पत्थर
बन कर ठिठुरे रहे अड़े
अवयव की दृढ़ मास-पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, रक्त का
होता था जिनमे सचार
चिंता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमे ओत-प्रोत
'उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत

श्रद्धा का प्रथम परिचय का चित्र देखिये—

मसृण गाधार देश के नील रोम वाले मेघों के चर्म
ढक रहे थे उसका वपु कांत बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखिला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-बन बीच गुलाबी रंग
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हो घनश्याम
अरुण रविमंडल उनको भेद दिखाई देता तो छविधाम

या कि नव इंद्र नील लघु शृंग फोड़ कर धधक रही हो कांत
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत
घिर रहे थे घुंघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास
नील घनशावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास

ओह उस मुख पर वह मुस्क्यान
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम

गर्भिणी श्रद्धा का चित्र इससे नितांत भिन्न है—

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुश कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज
कोमल काले ऊनों की नव-
पट्टिका बनाती रुचिर साज
सोने की सिकता में मानो
कालिंदी बहती भर उसास
स्वर्गंगा में इंदीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास

इड़ा का चित्रण इससे भिन्न कुछ रूपकमय हो गया, इसलिये कि प्रसाद इड़ा में विज्ञानमयी बुद्धिमत्ता का प्रतीक उपस्थित कर रहे थे। परंतु यह चित्र भी उनकी कुशल कवि-लेखनी का प्रमाण है

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल
वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल

दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुञ्जरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमे भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरगमयी आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल

इन सब उद्धरणो से स्पष्ट है कि प्रसाद मानव सौन्दर्य के चित्रण मे कुशल थे, परंतु जैसा हमने देखा है, वह आरम्भ से रीतिकालीन अस्वस्थ नारी-चित्रण के विरोधी थे। इसीसे उनके नारी-सौन्दर्य चित्रण का आधार अत्यंत निर्मल है। कल्पना के सुन्दरतम उपकरणो ने श्रद्धा और इड़ा की मूर्तियों को सँवारा है। हो सकता है, स्थूल चित्रण के प्रेमी यहाँ कच-कुच-कटाक्ष या परंपरागत नखशिख न पाकर प्रसाद से 'अशरीरी' या 'कामिक मनोवृत्तियों के प्रच्छन्न पोपण' की शिकायत की, परतु प्रसाद की दृष्टि वाह्य-सौन्दर्य के तरलतम तत्त्वों मे पकड़ती है। नारी के सौन्दर्य चित्रण की जो नखशिख परिपाटी विद्यापति और सूरदास के काव्य मे होती हुई देव और पद्माकर तक पहुँची है, प्रसाद का अलकारिक एव प्रतीकात्मक चित्रण इसका विरोधी है। पुरुष-सौन्दर्य के चित्रण तो सूर और तुलसी के काव्य पर समाप्त हो जाते हैं। अन्य भक्त-कवि राधा की झलक से चौंधिया गये और रीति-कवियो ने नारी से ऊपर दृष्टि उठा कर नर की ओर देखा भी नही।

प्रकृत प्रेम-काव्य मे नर-नारी का सौन्दर्य विलास-मात्र नहीं होता। इसी से प्रसाद के तीनों प्रधान पात्र बड़ी सतर्कता से चित्रित किये गये हैं और उनमें स्वस्थ नर-नारी का ही रूप खुलता है।

## ४—सौन्दर्य : प्रकृति

'इंदु' (१९०९-१९१६) में 'प्रसाद' का पहला लेख पहली संख्या में प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था प्रकृति। 'इंदु' में प्रकाशित 'प्रसाद' की आरंभिक रचनाओं के सम्बन्ध में लिखते हुए हमने उनके प्रारंभिक प्राकृतिक काव्य के भी उद्धरण दिए है। अन्य छायावादी कवियों के साथ 'प्रसाद' की दृष्टि पहले प्रकृति के सौन्दर्यपूर्ण गति-विधानों पर गई। 'चित्राधार' में ही वह कहते है—

> नील नभ में शोभित विस्तार
> प्रकृति है सुन्दर परम उदार
> नर-हृदय परिमित, पूरित स्वार्थ
> बात जॅचती कुछ नहीं यथार्थ

इसके बाद तो उनके सारे काव्य मे प्रकृति के अनेक रूपों के शुद्ध एवं रहस्यात्मक चित्र मिलेगे। उन्होंने अपने इस प्रकृति प्रेम को दर्शन की दृढ़ भित्ति देने की भी चेष्टा की है। वे कहते हैं—"साहित्य मे विश्वसुन्दरी प्रकृति मे चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद : सौन्दर्य लहरी के 'शरीरंत्वं शम्भो-' का अनुकरण मात्र है।" (रहस्यवाद : काव्य और कला, पृ० ३६) 'कामायिनी' मे प्रकृति के इसी विराट एवं रहस्यमय रूप का अंकन है। कथावस्तु में प्रकृति को इस प्रकार गूॅथ दिया गया है कि किसी भी प्रकार दोनो को अलग करना कठिन हो जाता है। प्रारम्भ मे प्रकृति का एक प्रलय चित्र है—

> नीचे जल था, ऊपर हिम था
> एक तरल था, एक सघन
> एक तत्त्व की ही प्रधानता
> कहो उसे जड़ या चेतन

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान
नीरवता-सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान

× × ×

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी
धँसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निःश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास
तरल तरंगाघातों से उर्मि
क्रुद्ध सिंधु के, विचलित-सी
व्यस्त महा कच्छप-सी धरणी
ऊभ चूम थी विकलित-सी
उड़ने लगा विलास वेग-सा
वह अति भैरव जल-सघात
तरल तिमिर प्रलय पवन का
होता आलिंगन प्रतिघात

यहाँ कवि बाह्य चित्रण से हटकर प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता पर आता है—

महानील उस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिमान
ग्रह-नक्षत्र और विद्युतकण करते हैं किसका संधान
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए
तृण-वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस में सिंचे हुए

सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ
सदा मौन-से प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ

कहीं वह प्रकृति में पात्र के हृदय के स्पंदन सुनते हैं। मनु चले गये हैं। वह रात श्रद्धा के लिये सुन्दर होने पर भी कितनी भयावह है, कितने धूमिल, कितनी निस्तब्ध ?

उजले-उजले तारक झलमल
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
धारा बह जाती बिम्ब अटल
सुनता था धीरे पवन पटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्षपाँत
सुनती जैसे कुछ निजी बात
धूमिल छाया मे रही घूम
लहरी पैरों को रही चूम

कहीं अत्यंत ऐश्वर्यशाली कल्पना-चित्र का निर्माण करता है। अलंकृत वर्णनों और शब्दमाधुर्य के सहारे एक अतीन्द्रिय लोक पाठक के नेत्रों के आगे उपस्थित हो जाता है—

नवनील कुञ्ज हैं झीम रहे
कुसुमो की कथा न बद हुई
है अंतरिक्ष आमोद भरा
हिमकणिका ही मकरंद हुई
इस इंदीवर से गध-भरी
बुनती जाती मधु की धारा
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहिनी-सी कारा

सच तो यह है, प्रसाद के प्राकृतिक चित्रों का ऐश्वर्य और उनका वैभिन्य अद्भुत है। प्रलय के बाद प्रकृति का उल्लासमय मुख देखिये—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसा मधुमय पिंग पराग

नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार-बार जाती सोने

हिमालय का एक सुन्दर चित्र है—

अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर
निद्रा में सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर

× × ×

संध्या घन-माला की सुन्दर
ओढे रंग-विरंगी छींट
गगन-चुम्बिनी शैल श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार-किरीट

सारी 'कामायिनी' प्रकृति के स्वप्न-शासन में गढ़ी गई है :

देख लो, ऊँचे शिखर का व्योम-चुम्बन व्यस्त
लौटना अंतिम किरण का और होना अस्त

चलो तो इस कौमुदी में देख आवें आज
प्रकृति का यह स्वप्न शासन, साधना का राज

'प्रसाद' ने प्रकृति को इसी 'स्वप्न', इसी 'साधना भूमि', 'शम्भु का शरीर' या उसकी शक्ति के रूप में देखा समझा है।

## ५—प्रेम

'प्रेमपथिक' की रचना के आरम्भ से जीवन के अंत तक 'प्रसाद' ने प्रेम की रस-भीनी बाँसुरी बजाई है। प्रेम और वासना की मीमांसा करने वाले हिंदी कवि 'प्रसाद' प्रथम हैं। 'प्रेमपथिक' में उन्होने प्रेम को अनन्त रहस्यमयता प्रदान कर दी थी—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है अंत भवन में टिक रहने
किंतु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं

प्रेम का यह उद्देश्य रीतिकालीन कामिक वृत्ति से कितना महान है।

प्रेम के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण अत्यंत स्वस्थ है। वह उसे न एकदम त्याग कर चलते हैं, न एकदम लौकिक। उनका प्रेमी लौकिक प्रेममें अध्यात्म का संकेत पाता है। भक्त कवियों ने प्रेम को इतना ईश्वरोन्मुख कर दिया कि वह इस संसार को अपदार्थ, अयथार्थ और ताज्य समझने लगा। शृङ्गार रीति कवियों ने उसे वासना के पंक से कलुषित कर दिया। आधुनिक हिंदी प्रेम-काव्य इन दोनों अतियों को छोड़ कर बीच के प्रकृत एवं स्वस्थ पथ पर चलता है। वह अध्यात्म में लोक और लोक में अध्यात्म का दर्शन करता है। वह लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम के उच्च स्थल पर उठा कर देखता है। इससे भले ही कहा जाय कि उसमें कामिक वृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण है या यह 'काया' से पलायन-मात्र है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम के

संबंध में यह नई भावना युगानुकूल है और भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के विपरीत भी नहीं पड़ती। प्रसाद जीवन को अनंत मानते हैं, इससे प्रेम भी स्वतः अनंत हो जाता है—

हे जन्म-जन्म के जीवन
साथी संसृति के दुःख में
पावन प्रभात हो जावे
जागो आलस के सुख में
जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे (आँसू)

'कामायिनी' में प्रेम के राजस, तामस और सात्विक तीनों रूप आते हैं। श्रद्धा सात्विक प्रेम की प्रतीक, मनु तापस प्रेम के, इड़ा राजस की। इस प्रकार प्रेम के तीनो सप्तको को प्रसाद ने छू लिया है। श्रद्धा तो प्रेमपुत्तलिका ही है—

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल वृद्धि थी प्रेमकला
उसका सन्देश सुनाने को
संसृति में आई यह अमला

परन्तु मनु का प्रेम उद्दाम है, वासना-प्रधान है, कायिक है। 'काम' और 'वासना' शीर्षक सर्गों मे प्रसाद ने इसी उद्दाम प्रेम की मीमांसा की है। चुपके-चुपके प्रेम जीवन मे प्रवेश करता है—

मधुमय वसंत जीवन बन के
बह अंतरिक्ष की लहरों में
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों मे

क्या तुम्हें देख कर आते यों
मतवाली कोमल बोली थी
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखे खोली थीं

मनु और श्रद्धा के प्रेम की विभिन्नता को प्रसाद यों प्रकट करते हैं—

एक जीवन सिंधु था, तो वह लहर लघु लोल
एक नवल प्रभात, तो वह स्वर्ग किरण अमोल
एक था आकाश वर्षा का सजल उद्दाम
दूसरा रंजित किरण से श्री-कलित घनश्याम

मनु ने श्रद्धा के सामने प्रणय-निवेदन किया। नारी पुरुष के इस आत्मसमर्पण की अवहेलना न कर सकी—

मधुर व्रीड़ा मिश्र चिंता साथ ले उल्लास
हृदय का आनंद कूजन लगा करने रास
गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक
स्पर्श करने लगी लज्जा कलित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदंब सा था भरा गद्‌गद् बोल

परन्तु कायिक प्रेम की भित्ति ही कितनी! गर्भिणी श्रद्धा ने इस वासना के प्रवाह को झकझोर दिया—

मनु ने देखा जब श्रद्धा का
वह सहज खेद से भरा रूप
अपनी इच्छा का दृढ़ विरोध
जिसमें वे भाव नहीं अनूप
वे कुछ भी बोले नहीं, रहे
चुपचाप देखते साधिकार

श्रद्धा कुछ-कुछ मुसकरा उठी
ज्यों जान गयी उनका विचार

अंत मे मनु भाग जाते हैं। वात्सल्य-भाव में पक कर जब श्रद्धा के प्रति उनका प्रेम तपा सोना हो जाता है और इड़ा का राजस प्रेम नग्नरूप मे तृष्णा बन कर सामने आता है, तब फिर प्रत्यावर्तन होता है। अब मनु श्रद्धा के महान मातृत्व से परिचित होते हैं—

कुछ उन्नत थे वे शैल शिखर
फिर भी ऊँचा श्रद्धा का सिर
वह लोक अग्नि में तप गल कर
थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर
मनु ने देखा कितना विचित्र
वह मातृमूर्ति की विश्वमित्र

इसी से वे अब उसे पथप्रदर्शिका मान लेते है—

श्रद्धे! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज सबल
सब पाप-पुण्य जिसमे जल-जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञान लेश
समरस अखण्ड आनन्द वेश

वास्तव मे श्रद्धा 'प्रेमपथिक' की प्रेमभावना का सब से सुन्दर पर्यावसान है। यहाँ प्रेम मे देना ही देना है, लेना कुछ भी नहीं। तभी 'लहर' का कवि कहता है, तू क्यो चिल्लाता है. मुझे प्रेम नहीं मिला—

पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब

आँसू के कण-कण से गिन कर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू फिर क्यों उठता है पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार

वह तो अमर जीवन का पहला प्रभात है जो मृत्यु और असफलता, दुःख-शोक से किंचित भी परिचित नहीं—

जिसके आगे पुलकित हो
जीवन है सिसकी भरता
हाँ, मृत्यु नृत्य करती है
मुस्काती खड़ी अमरता
वह मेरे प्रेम विहँसते
जागो मेरे मधुवन में (आँसू)

इस प्रकार हम प्रसाद को आदि से अंत तक स्वस्थ प्रेम के उदात्त गायक के रूप में पाते हैं।

## ६—अज्ञात सत्ता

हम बता चुके हैं कि प्रसाद के प्रारंभिक काव्य पर 'गीतांजलि' का प्रभाव है। गीतांजलि में जिस प्रकार रवि ठाकुर ने जीवन-देवता की कल्पना की और उसके प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण के गीत गाये उस प्रकार के गीत गाना हिन्दी के छायावादी कवियों के प्रति एक रूढ़ि हो गई। प्रसाद स्वयं अद्वैतनिष्ठ शैवभक्त थे, अतः उन्होंने 'गीतांजलि' के इस संकेत को भी खूब निभाया। सितम्बर १९१६ में प्रकाशित 'सुख की नींद' सॉनेट को रवीन्द्र बाबू की इस कविता से मिलाइए—

तखन रात्रि आँधार हलो, साङ्ग हलो काज
आमरा मने भेपे छिलोमे, आसवे न केउ आज

× × ×

तखन रात आँधार आछे उठलो बेजे भेरी
के फुकारे—"जाग सवाइ आसे कोरो ना देरि"
कोथाय आलो, कोथाय माल्य, कोथाय आयोजन !
राजा आमार देशे एल, कोथाय सिंहासन !
हाय रे भाग्य, हाय रे लज्जा !
कोथाय सभा, कोथाय सज्जा !
दुयेक जने कहे काने 'वृथा ए क्रन्दन—
रिक्त करे शून्य घरे करो अभ्यर्थन !'

( अंग्रेजी गीतांजलि, ५१ )

परन्तु प्रसाद उपनिषदों की रहस्यवादिता की ओर आकर्षित नहीं थे, अतः उन्होंने इस प्रकार के रहस्यवादी गीत लिखना छोड़ दिया। उनके काव्य में रहस्यवाद आनंदवाद बन कर आया है। उनके गहरे जीवन चिंतन से वह ओतप्रोत है। कवि इस विश्व को परमात्म-तत्त्व से वियोगित 'जले हुए' रूप में देखता है। वह कहता है—

स्नेहालिङ्गन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो
जीवनधन ! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो

कभी गाता है—

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्राण समा जा रे (लहर)

कहीं उसके वियोग के गीत गाता है—

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को
मेरी आँखों में आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को

कहीं उसे सम्बोधित कर पुकार उठता है—

अब जागो जीवन के प्रभात !

कभी प्रिय-मिलन-चुहल के एक बड़ा रूपक ही खड़ा कर देता है—

निज अलकों के अंधकार मे तुम कैसे छिप आओगे
इतना सजग कुतूहल, ठहरो, यह न कभी बन पाओगे
आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं
दुःख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही
वसुधा चरण चिह्न-सी बनकर यहीं पड़ी रह जायेगी
प्राची रज-कुंकुम ले चाहे अपना भाल सजायेगी
देख न लूँ, इतनी ही तो है इच्छा ? लो, सिर झुका हुआ
कोमल किरन उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ
फिर कह दोगे, पहचानो तो, मैं हूँ कौन, बताओ तो
किन्तु उन्हीं अधरों से, पहिले उनकी हँसी दबाओ तो
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
वेला बीत चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो

× × ×

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
इसमें क्या है धरा, सुनो
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित
मेरे क्षितिज उदार बनो

यहां वही अज्ञात सत्ता 'क्षितिज' नाम से पुकारी गई। कवि प्रार्थना करता है कि यह लुकाछिपी बंद हो जाये, मानवात्मा और परमात्मा का सहज संबध स्थापित हो। प्रयत्न करने पर भी जब वह अज्ञात तत्त्व अपने को छिपा नहीं सकता तो यह चुहल क्यों ? बात उसी तरह की है जिस तरह की बात भक्तों ने कही है, परन्तु परंपरा से हटकर अमूर्त्त भावों से संबद्ध होने के कारण उसमें रहस्यमयता आ जाना अनिवार्य है।

## ७—जीवन-संदेश

कवि के जीवन-संदेश को हमने 'कामायिनी' शीर्षक के अतर्गत विस्तारपूर्वक समझाया है। यहाँ हमे केवल यही कहना है कि आधुनिक कवियों मे प्रसाद जी का एक विशिष्ट स्थान है। इस विशिष्ट स्थान का कारण उनकी दार्शनिक गंभीरता है। पंत, निराला और महादेवी की दृष्टि एकांगी है। ये कवि जीवन की अनुभूतियों में उतने गहरे नहीं उतरते। इनमे पंत ने समय-समय पर मानवजीवन और नवीन मानव-समाज की कल्पना को भी अपनी कविता का विषय बनाया है, परन्तु वह 'वादों' के बाहर स्वतन्त्र चिंतक के रूप में हमारे सामने नही आते।

'जीवन-संदेश' की दृष्टि से 'कामायिनी' विशेष महत्त्वपूर्ण है और आज वह एक महान युग-स्तंभ बन गई। उसमें जीवन के मौलिक तत्त्वो की गवेषणा की गई है और विभिन्न विरोधी तत्त्वों में सामञ्जस्य लाने की चेष्टा की गई है। प्रसाद के नाटक उपन्यास और उनके निबंध उनके जीवन-संबंधी दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखते है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रसाद का एक सर्वांगीण अध्ययन उपस्थित किया जाय और उन्हे एक महान युग नेता के रूप में देखा-परखा जाय। तभी हम उनकी महत्ता का पता पा सकेंगे।

## ८—शैली

प्रसाद की शैली एक आनदवादी, चितक कवि की शैली है। जब हम यह कहते है तो हम उनकी प्रौढ़ शैली के संबंध में ही कहते है। वैसे प्रसाद के काव्य मे अनेक प्रकार की शैलियाँ हैं और एक लंबे युग (१६०६-३६) तक वे बराबर अपनी शैलियों का परिष्कार करते रहे है। 'आँसू' के तीनों सस्करणों में जो

कवि के जीवन-काल में प्रकाशित हुए है उसने परिवर्तन और परिवर्द्धन का क्रम जारी रखा है। श्री रामनाथ सुमन जैसे आलोचकों की दृष्टि में ये परिवर्तन सब कहीं समान रूप से अधिक सुन्दर नहीं हो सके है। परन्तु फिर भी इससे प्रसाद की कला पर प्रकाश पड़ता है।

प्रसाद की भावाभिव्यंजना की कई विशेषताएँ हैं :

(१) उसकी सरसता।

(२) उसकी सांकेतिकता।

(३) उसकी ऐश्वर्यशाली मूर्तिमत्ता।

इन्हीं तीनों प्रमुख विशेषताओं ने प्रसाद का 'प्रसादत्व' स्थापित किया है। उनकी रचनाशैली इतनी अपनी है कि सारे आधुनिक काव्य मे उनका एक छंद भी कहीं नहीं छिप सकता। जहाँ प्रसाद अमूर्त्त भावों और उत्तेजनाओं का चित्रण करते हैं, वहाँ वे संसार के किसी भी कवि से टक्कर ले सकते है। मनु के आश्रम में चद्रिका का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

धवल मनोहर चन्द्रबिम्ब से<br>
अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ<br>
जिसमे शीतल पवन गा रहा<br>
पुलकित हो पावन उद्गीथ

इसमे 'उद्गीथ' शब्द से सामवेदकालीन सभ्यता का चित्र उपस्थित हो जाता है। इस पुस्तक में सौन्दर्य के जो उद्धरण हमने दिये हैं, उनसे स्पष्ट हो जायगा कि कवि की मूर्तिमत्ता कितनी ऐश्वर्यशालिनी है। 'कामायिनी' में तो यह कल्पना-विलास इतना बढ़ गया है कि उससे काव्य की सहज गति ही रुद्ध हो गई है। 'काम' सर्ग में वसंतरजनी का चित्र है—

उद्बुद्ध क्षितिज की श्याम छटा<br>
इस उदित शुक्र की छाया में

ऊषा-सा कौन रहस्य लिये
सोती किरणों की काया में
उठती हैं किरणों के ऊपर
कोमल किसलय की छाजन-सी
स्वर का मधु निस्वन रंध्रों में
जैसे कुछ दूर बजी वंसी
सब कहते हैं—'खोलो-खोलो
छवि देखूँगा जीवनधन की'
आवरण स्वयं बनते आते
है भीड़ लग रही दर्शन की
चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं
अवगुण्ठन आज सँवरता-सा
जिसमें अनत कल्लोल भरा
लहरों में मस्त विचरता-सा
अपना फेनिल फन पटक रहा
मणियों का जाल लुटाता-सा
उन्निद्र दिखाई देता हो
उन्मत्त हुआ कुछ गाता-सा

इस प्रकार के न जाने कितने ऐश्वर्यपूर्ण चित्र प्रसाद की प्रतिभा ने कामायिनी में गूँथ दिये हैं। कभी तो कवि व्यंजना-लक्षणा के सहारे सांकेतिक अर्थ भरता हुआ दूर तक चला जाता है—

ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्ववन की व्याली
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप-सी मतवाली
हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल रेखा
हरी-भरी-सी दौड़-धूप, ओ जल-माया की चल रेखा
इस ग्रह-कक्षा की हलचल! तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की, और न कुछ सुनने वाली बहरी

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी ! अरी आधि मधुमय अभिशाप
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी, पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप

लक्षणा के अनेक भेद-प्रभेदों का प्रयोग प्रसाद ने इस ग्रंथ में किया है। 'यथार्थवाद और छायावाद' निबंध में उन्होंने प्राचीन ध्वन्याचार्यों को अपना आदर्श माना है। उन्होने आनन्दवर्द्धन के इस श्लोक को उद्धृत किया है—

मुख्या महाकवि गिरामलंकृति भृतामपि।
प्रतीयमानच्छायैषाभूषालज्जेव योषिता ॥

और 'प्रतीयमान छाया' की व्याख्या करते हुए कहा है—कवि की वाणी मे यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा भूषण की तरह होती है। × × इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष काल में अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की भी थी, किन्तु आन्तर अर्थवैचित्र्य को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। 'कामायिनी' के अनेक प्रयोग कवि की इस अपनी व्याख्या के बाद ही समझ में आते है।

## ९—गीतात्मकता

प्रसाद के काव्य मे काव्य संगीत के इतने निकट आ गया है कि हमे आश्चर्य होता है। अधिकांश काव्य सुन्दर रूप से गेय है। जैसे नाटकों के लिए आधुनिक 'प्रगीतों' (लिरिक) की रचना पहले प्रसाद ने ही की और इसके बाद पंत और प्रसाद ने अनेक सुन्दर प्रगीति हिन्दी को दिये। प्रसाद के दो सुन्दर गीत 'बीती विभावरी जाग री।' और 'ले चल मुझे भुलावा देकर, नाविक, धीरे-धीरे' हिन्दी-काव्य के सब से लोकप्रिय गीत हैं। यह अवश्य कि अन्य छायावादी कवियों के गीतों की तरह प्रसाद के गीत हिन्दी जनता के कंठ की भारती नहीं बन सके, परन्तु इसमें दोष उन शताब्दियों का है जिन्होंने हिन्दी भाषा क्षेत्र की संस्कृति और

भाषा को मूलतः नष्ट कर दिया है। जो हो, प्रसाद के गीतिमय काव्य ने हिन्दी-काव्य-धारा को एक नई दिशा दी है, इसमें कोई संदेह नहीं।

## १०—भाषा

प्रसाद की भाषा के अध्ययन के लिए एक छोटी-मोटी पुस्तक की आवश्यकता है। उन्होंने शब्द, शब्द-समूहों और वाक्यों की नई-नई भंगिमाओं की खोज की है। भाषा की दृष्टि से वे हिन्दी के सब से समर्थ कवि हैं। उन्होने जीवन को एक नई दृष्टि से देखा और उसे सच्चाई से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की। भावों की लुका-छिपी और संघात-प्रतिघात के वर्णन में वे अद्वितीय है। यह अवश्य है कि उन्होने संस्कृतज्ञो की भाषा-संबंधी कला-कौशलता में पारंगतता प्राप्त की, परन्तु साथ ही उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी और बंगला काव्य से भाषा की नई गति-विधियाँ उधार लीं। उनकी इस दिशा की प्रवृत्तियो की इतनी बहुलता है कि उन्हें विशेषण-विपर्यय, मूर्तिमत्ता, अमूर्त्त संस्थापन जैसे कुछ गिने-चुने शब्दों मे भरना असंभव है। सच तो यह है, भाषा की दृष्टि से जो क्रान्ति छायावाद-काव्य मे हुई है, उसकी महत्ता को हमने अभी नहीं समझा और न उसका वैज्ञानिक अध्ययन ही किया है। जब हम यह कर सकेंगे, तब हम प्रसाद की समर्थ भाषा के ऊपर से अस्पष्टता और रहस्यमयता का आवरण उतार सकेंगे।

## ११—छंद

खड़ी बोली में अपने विशिष्ट काव्य के प्रकाशन के लिए नए छंद गढ़ना पड़े हैं, नये प्रयोग करने पड़े हैं, परन्तु पंत और निराला जैसी स्वतंत्रता उन्होंने नहीं ली है। 'इंदु'-काल में हम

उन्हें सॉनेट जैसे अंग्रेजी और त्रिपदी और पयार जैसे बङ्गाली छन्दों का प्रयोग करते हुए पाते हैं। उन्होंने अतुकांत काव्य का भी प्रयोग किया और 'महाराणा का महत्त्व' और 'प्रेम-पथिक' जैसे सफल काव्य लिखे। अंतिम रचनाओं में कुछ मुक्त छंद की रचनाएँ भी हैं जो स्वयं महत्त्वपूर्ण हैं। 'आँसू' में प्रसाद ने पहली बार एक निश्चित छंद का प्रयोग किया। इस छद में १४, १४ के विराम से २८ मात्राएँ है। प्रसाद के अनुकरण मे यह छंद बड़ा लोकप्रिय हुआ और स्वयं प्रसाद को भी इसका मोह अंत तक बना रहा। 'कामायिनी' का अंतिम सर्ग 'आनन्द' इसी आँसू-छंद मे है। परन्तु प्रसाद की कविता केवल एक-दो निश्चित छंदों तक सीमित नहीं है। 'कामायिनी' मे ही एक दर्जन के लगभग छंदो का सफल प्रयोग है। ये छंद है—ताटंक (चिंता, आशा, स्वप्न, निर्वेद), पादाकुलक (काम, लज्जा), रूपमाला (वासना), सार (कर्म), रोला (संघर्ष)। इनके अतिरिक्त नये प्रयोग भी है जैसे ईर्ष्या और दर्शन सर्ग (पादाकुलक+पद्धरि), रहस्य सर्ग (ताटंक+ऽ) 'इड़ा' मे गीतों (गेय पदो) का प्रयोग कर प्रसाद ने एक नवीन आदर्श स्थापित किया और इसमें तुकांत में भी सुन्दर परिवर्तन कर दिये हैं।

## १२—प्रसाद : विकास के पथ पर

'इंदु' (१९०९) से लेकर 'कामायिनी' (१९३६) तक प्रसाद ने जो काव्य लिखा, वह अधिक नही, परन्तु जब हम उनकी अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियो को देखते है तो हमें स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ने काव्य को बड़ी साधना से बनाया-सँवारा है। कदाचित् किसी भी कवि को विकास की इतनी मंजिले नहीं नापनी पड़ीं, न किसी ऐसी साधारण भूमि से उठकर कवि 'कामायिनी' जैसी परिणति पर पहुँच सका। प्रसाद के विकास

का इतिहास स्वयं एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है।"अभी इसका कोई भी पृष्ठ खुल नहीं सका है, यह हिंदी आलोचकों के लिए चिंता की बात है।

## १३—प्रसाद और उनका युग

प्रसाद का प्रौढ़ काल १९१५ से आरंभ होकर १९३६ में समाप्त हो जाता है। १९०५ से १९१५ तक के काव्य को हम उनके विकास-काल का काव्य मान लेते हैं। इस प्रकार उनके काव्य में दो दशक का समय समाप्त हो जाता है। प्रश्न यह है, प्रसाद के काव्य मे उनका युग कहाँ तक प्रतिबिंबित है? उत्तर कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु असंभव नहीं है। प्रसाद साधक कवि थे। काव्य ही उनकी साधना थी। वे आनन्दवादी थे। आनन्दवादी शैव कालिदास ने जिस प्रकार कला की उपासना की थी, उसी प्रकार प्रसाद ने काव्य को साधना बना लिया। यह साधना एकांतिक साधना थी। बाहर की हलचलें उस तक नहीं पहुँची। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि प्रसाद युग के प्रति सचेत नही थे। 'कंकाल' और 'तितली' और चार कहानी-संग्रह इसके उदाहरण है। उन्होंने युग की प्रत्येक समस्या को खुली आँखो से देखा, जो देखा, वह चित्रित किया, चाहा तो समाधान भी दिया। परन्तु प्रसाद कलाकार कला के भिन्न-भिन्न अगो की सीमाएँ मानकर चले, उन्होंने नाटको में अतीत की पुस्तक के पन्ने पलटे, उपन्यासो मे समसामयिक जगत को खुली यथार्थवाद की आँखो से देखा, परन्तु काव्य-रचना के समय अपनी एकांतिक साधना का आग्रह किया। इसी कारण इतिहासकार प्रसाद, समस्य-शोधक प्रसाद, युग-चित्रकार प्रसाद और कवि प्रसाद मे भिन्नता उपस्थित हो जाती है।

यह आग्रह उनका जीवन भर बना रहा। जो आलोचक प्रसाद के व्यक्तित्व के इस द्वैत को नहीं समझते, वे धोखा खा

जाते हैं। उन्होंने युग के चित्र खींचे, उसमें ज्ञान, कर्म और भाव का जो विरोध है वह समझा, इतिहास की ओर मुड़ कर उन्होंने परिस्थिति का समाधान पाने की चेष्टा की। बुद्ध का करुणा में उन्हें समाधान मिला। परन्तु उन्होंने देखा, यह समाधान व्यक्ति के लिए हो सकता है, परन्तु दुःखबोध या करुणा सारे संसार के सारे प्राणियों के लिए कोई सदेश नहीं। अंत मे वह शैवागमों की ओर गये। यहाँ उनकी गति अबाध थी। उन्हें आनंदवाद का संदेश मिला। यह स्वयं उनकी प्रकृति के अत्यन्त निकट था, अतः उन्होंने बुद्ध की करुणा के संदेश (दुःखवाद) से हटकर आनन्द की वंशी बजा दी। शैवो के त्रिपुरदाह मे उन्होंने सांकेतिक अर्थ में ज्ञान, कर्म और भाव के त्रैत के ऊपर के एक ज्ञान-कर्म-भाव संतुलित संसार का संदेश पढ़ा। 'कामायिनी' (१६३६) मे उन्होंने इस संदेश को विस्तारपूर्वक समझा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद के तीन रूपों मे कोई मौलिक विरोध नहीं है। उनके नाटको का दुःखवाद या करुणावाद 'कामायिनी' के आनंद-वाद या 'त्रिपुरदाह' के पहले का समाधान है।

१६१४ में 'गीतांजलि' और गांधी दो महान् प्रभावो से हिंदी संसार परिचित हुआ। गीतांजलि मे आत्म-समर्पण का संदेश था, एक ऐसा अध्यात्म था, जिससे उपनिषदो के समय से अब तक भारतीय हृदय बराबर परिचित रहा है। गांधी का संदेश और भी मौलिक था। वह जीवन को एक नितांत नए ढङ्ग से गढ़ना चाहते थे। 'गीतांजलि' भाव का प्रतीक था, गांधी कर्म के। युग की प्रताड़ना से विकल होकर रवि बाबू उपनिषदों के भारत की ओर गये हैं और वहाँ से आश्रम-सभ्यता और अदृश्य देशों के प्रति आत्मसमर्पण का संदेश लाये। प्रसाद ने भी यही चेष्टा की, परन्तु उन्होंने बुद्ध के करुणावाद को ढूँढ निकाला। 'लहर' की एक कविता मे उन्होने इस करुणावाद की रूपरेखा दी है—

छोड़ कर जीवन के अतिवाद
मध्य पथ से लो सुगति सुधार
दु.ख का समुदय उसका नाश
तुम्हारे कर्मों का व्यापार

परन्तु उनके नाटकों में यह संदेश अधिक निखर कर आया है। परन्तु अंत में उन्हें जैसे इससे पूरा संतोष नहीं हुआ। वे और पीछे हटकर "शैवागमो" और इन्दुकाल के वैदिकों के आनन्दवाद की ओर गये। 'गीतांजलि' से हिन्दी संसार में जो जिज्ञासा आरंभ हुई थी, 'कामायिनी' उसी का समाधान लाई। रवि बाबू के 'भाव'-वाद और गांधीजी के 'कर्मवाद' को प्रसाद ने अधूरा समझा। उन्होंने जीवन मे स्वर्गीय आनन्द की संस्थापना पर बल दिया। भाव-कर्म-ज्ञान का संतुलन ही मानव के लिए श्रेष्ठ आदर्श है।

एक तरह से प्रसाद का सारा काव्य गांधीयुग के सारी हलचलों के बीच चुनौती की तरह खड़ा है। लोग उसपर 'पलायन' की लांछा लगाते है। परन्तु प्रसाद कवि ।को चितक के रूप में देखते थे, अतः वह कवि-ऋषि के नाते समस्या के भीतर बहुत दूर तक उतरे।

## १४—प्रसाद : युगेतर

इसी से हम कह सकते हैं कि प्रसाद के काव्य मे युग की समस्या को युग-युग की समस्याओं की तुला पर परखा है। उन्होंने युग से ऊपर उठ कर जीवन के महान् तत्त्वो में सामञ्जस्य लाने का प्रयत्न किया। प्रसाद मूलतः प्रेम, सौंदर्य और आनंद के कवि हैं। उनके काव्य मे सारे उपकरण इन्ही युगेतर तत्त्वों के आधार को पुष्ट करते दिखाई पड़ते है। प्रकृति का भी स्वतंत्र प्रयोग हम प्रसाद के काव्य में नही पाते। उन्होंने मानव के

मनस्तत्त्व के स्थायी तत्त्वों को अपने काव्य का विषय बनाया। इसलिए वे युग के होते हुए भी युग-युग के है।

जान पड़ता है, काव्य के संबन्ध मे प्रसाद की एक मिश्रित धारणा थी। वह उसे प्रतिदिन के उत्ताप से भरना नहीं चाहते थे। उनके काव्य में जहाँ व्यक्ति के सुख-दुख का वर्णन है, वहाँ भी वह व्यक्तित्व को इतना दबा देते है कि उनका काव्य मानव-मात्र के लिए हो जाता है। इस प्रकार वह चिर नवीन, चिर जीवित, चिर स्पंदन रहते हैं। पंत ने जहाँ सौंदर्य, प्रेम और प्रकृति के गीत गाये हैं, वहाँ उन्होंने युग की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को भी परखा है, समाजवाद और साम्यवाद के तत्त्वों का मूल्यांकन भी उन्होने किया है। उनका काव्य सचमुच ही युगवाणी है। निराला ने रहस्यमयी सत्ता का टि क्रीड़ा-कलाप प्रकृति के महान चित्रों और पौराणिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तियो के मनस्तत्त्व के विश्लेषण से उतर कर समाजवादी काव्य मे योग दिया। 'बेला' और 'नये पत्ते' उनकी इस नई दिशा की सूचना देते हैं। परन्तु तुलसी की तरह प्रसाद काव्य मे निस्पृह लगे। उन्होंने काव्य को आनंद माना, कवि-कर्म उनके लिए साधना बना, उन्होने कविता के माध्यम से युग-युग के अनुरूप जीवन दर्शन की सृष्टि की। यही प्रसाद की महत्ता है।

इसी युगेतर प्रसाद को हम भारतीय साहित्य की निधि मानते है। यही वे हिंदी की सीमा से निकलकर विराट्-विश्व के हो गये हैं। यहीं वे प्रेम, सौंदर्य और आनन्द के महान् सौंदर्यवाहक के रूप में हमारे सामने आते हैं। प्रेम के संबंध मे प्रसाद का आदेश कितना सार्वभौमिक है—

> प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
> तब तुम प्रियतम स्वर्गविहारी होने का फल पाओगे

इसका निर्मल विधु नीलाम्बर मध्य किया करता क्रीड़ा
चपला जिसको देख चमक कर छिप जाती है घनपट में
प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्तिमात्र मे बना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब मे समता है
इस पथ का उद्देश नहीं है श्रांत भवन मे टिक रहना
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं
अथवा उस आनंद भूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं

आशा के कितने स्वर उनमे बजते है :

फिर तम प्रकाश झगड़े मे
नव ज्योति विजयिना होती
हँसता यह विश्व हमारा
बरसाता मजुल मोती

स्वयं वेदना मे तप कर मानव जगत को प्रकाश और शीतलता देनेवाले कवि का अभिनंदन विश्व करेगा। कवि कहता है—

निर्मम जगती को तेरा
मगलमय मिले उजाला
इस जलते हुए हृदय की
कल्याणी शीतल ज्वाला

इस प्रकार कवि मङ्गलाशी हो एक नवीन शांति युग की ओर इंगित करता है, जब मनुष्य मनुष्य मे सहज सद्भाव जाग्रत हो जायेगा। 'कामायिनी' मे कैलाश इसका प्रतीक है। इड़ा और मनु को कैलाश-शिखर की ओर इंगित कर प्रसाद कहते है—

मनु ने कुछ-कुछ मुस्क्याकर
कैलास ओर दिखलाया

बोले "देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया

हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि यहाँ है

चेतन समुद्र में जीवन
लहरों सा बिखर पड़ा है
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना
निर्मित आकार खड़ा है

इस ज्योत्स्ना के जलनिधि मे
बुदबुद-सा रूप बनाये
नक्षत्र दिखायी देते
अपनी आभा चमकाये

वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टिक्रम है,
सब में घुलमिल कर रसमय
रहता यह भाव चरम है

अपने दुःख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर

प्रसाद ने इस महान् विश्व को एक मङ्गलमयी महान सत्ता के स्पंदन के रूप में देखा है। मनुष्य का सुख-दुःख इस विश्व-हृदय की धड़कन-मात्र है। जब मनुष्य इसको समझ लेता है, तो वह परस्पर सहानुभूति और प्रेम के संबन्ध स्थापित करने में सफल हो जाता है। 'गांधीवाद', 'समाजवाद', 'साम्यवाद' आदि अनेक जीवनदर्शनों के समक्ष प्रसाद ने मौलिक रूप से एक नया पथ रक्खा है। यह पथ है शैवों का आनंदवाद और ज्ञान-कर्म और भाव के समन्वय का संदेश। इस आर्यपथ पर चलता हुआ मानव जगत् के दुःखों से त्राण पा सकता है, इसमें हमें किंचित-मात्र भी सन्देह नहीं है।

## १०

# प्रसाद : उनका अपना दृष्टिकोण

कवि की रचना की परख का एक ढङ्ग यह भी है कि हम स्वयं उसके काव्य और कला-संबंधी विचारो से परिचित हो और उसके आधार पर उसके काव्य की विवेचना करें। इससे कवि के साथ अधिक न्याय होने की आशा है। प्रसाद कवि ही नही हैं, वे असाधारण समीक्षक और साहित्य-द्रष्टा भी थे। प्रारंभ से ही काव्य और कला के संबंध मे उनके अपने विचार थे। 'इंदु' इसका प्रमाण है। 'इंदु' के माध्यम से उन्होने एक विशेष प्रकार का साहित्य हिंदी को दिया और वही उसकी व्याख्या भी की। परन्तु प्रसाद के प्रौढ़तम विचार भी हमारे पास 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध-ग्रथ मे सुरक्षित है। ये प्रसाद के वे लेख हैं जो उन्होने १६३० के बाद लिखे। अतः इन्हे हम कवि की प्रौढ़तम कृति समझ सकते हैं। इनमें हमें प्रसाद के उन प्रौढ़ विचारों का पता चलता है जो उन्हें एक युगप्रवर्तक समीक्षक के रूप भी हमारे सामने रखते है। भिन्न-भिन्न शीर्षको के अंतर्गत हम प्रसाद की काव्य और कला सबधी विचार-धारा को परखने की चेष्टा करेगे।

### १—कला

'काव्य और कला' निबध मे प्रसाद ने कला की नई परिभाषा उपस्थित की है और काव्य में उनना सबंध जोड़ा है। उनका कहना है कि काव्य और कला की पश्चिमी परिभाषाएँ भारतीय आचार्यों की परिभाषाओं में मेल नहीं खाती, न उनके आधार पर भारतीय काव्य और कला की परख हो सकती है।

यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने काव्य को संगीत के अंतर्गत रखा है। जर्मन दार्शनिक हेगेल ने कला के अंतर्गत ही काव्य का वर्गीकरण किया है। उसके अनुसार कला के दो रूप हैं—सूक्ष्म और स्थूल। संगीत और काव्य सूक्ष्म कला के भीतर आते हैं, कला शेष रूप (चित्र, मूर्ति, वस्तु) स्थूल रूप है। इस वर्गीकरण के अनुसार स्थूल कला से सूक्ष्म कला श्रेष्ठ है। माध्यम जितना भी सूक्ष्म होता जाता है, कला की उतनी ही श्रेष्ठता बढ़ती जाती है। इस आदर्श के अनुसार काव्य श्रेष्ठतम कला है। फिर संगीत। फिर चित्रकला। इस भांति आधुनिक आलोचना-शास्त्र में हेगेल की यह व्याख्या सर्वमान्य है।

नई साहित्यिक आवश्यकता की ओर दिलाया है। यदि हमें विशाल भारतीय प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य के रहते अपने मापदंड पश्चिम से उधार ले, तो क्या यह दुःख की बात नहीं है ?

इसीलिए प्रसाद प्लेटो और हेगेल की मान्यताओं को भारतीय काव्य और कला की परख के लिए अव्यवहारिक समझते हैं। अनेक सिद्धांत जो आज पश्चिम से आये हैं, मूलरूप में भारतीय शास्त्र-परंपरा में भी मिलते हैं, और समय-समय उन्होंने हमारे काव्य को प्रभावित किया है, इस पर भी प्रसाद ने बल दिया है। अपनी प्राचीन शास्त्र-परंपरा को भूलकर हम पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान को ही मुक्ति का एकमात्र द्वार समझ लेते हैं, यह हमारी अकिंचनता ही है। प्रसाद के मत में भारतीय काव्य-दृष्टि यूनानी काव्य-दृष्टि से श्रेष्ठतर है। यूनानी समीक्षक भौतिकता से ऊपर नही उठते। वे लौकिक उपयोगिता की दृष्टि से कला का वर्गीकरण करते हैं। मूर्त्त और अमूर्त्त का भेद इसी उपयोगितावाद पर निर्भर है। इसी से अरस्तू कला का 'अनुकरण' (Imitation) मात्र मान कर संतोष कर लेता है। भारतीय समीक्षक की दृष्टि से काव्य और कला लोकोत्तर आनन्द के विधायक है। वहाँ भौतिक दृष्टि नहीं है, अध्यात्म अधिक है। यूनानी विचारक कला और काव्य, धर्मशास्त्र और दर्शन को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानते हैं। कला और काव्य से धर्मशास्त्र की अनुभूति होती है, धर्मशास्त्र की अनुभूति से शुद्ध तर्कज्ञान के सौन्दर्य की। परन्तु भारतीय विचारक्रम कला और काव्य को गौण स्थान नहीं देता है। ऋषयो मन्त्रद्रष्टावः। ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं। कवि और ऋषि पर्यायवाची है। भारतीय विचार-धारा कवि, धर्मवेत्ता और द्रष्टा में भेद नहीं करती। अध्यात्मवादी भारत मूर्त्त और अमूर्त्त के चाक्षुष्-भेद को लेकर नही बैठ सकता था। मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों उस अमृतत्व (ब्रह्म) के भेद-मात्र हैं।

चाक्षुष् प्रत्यक्ष से इतर जो है, हृदय उसका भी रूपानुभव कर सकता है। स्वयं मूर्त्त विश्व अमूर्त्त ब्रह्म का स्वरूप मात्र है, अतः अभिन्न है।

अतः स्पष्ट है कि भारतीय कला-समीक्षक को मूर्त्त-अमूर्त्त के भेद को लेकर चलना नहीं होगा। उसे दर्शन ( ज्ञान ), धर्म ( नीति ) और काव्य ( सौन्दर्य ) को अलग-अलग मानकर नहीं चलना होगा। अपने मापदंड उसे अधिक आधारों पर स्थित करने होंगे।

भारतीय दृष्टि से काव्य और कला भिन्न-भिन्न कोटि की वस्तुएँ हैं। काव्य दर्शन है। कला उपविद्या है। यह विज्ञान से अधिक संबंध रखती है। स्वयं काव्य में भी समस्या-पूर्ति आदि कला हैं। वस्तु-निर्माण, मूर्ति, चित्र, नृत्य, गीतादि कलाएँ हैं। इन कलाओं की संख्या ६४ है। कला-पारंगत कलावंत कहलाते हैं। काव्य उपविद्या नहीं, विद्या है। वह 'कला' से बहुत ऊँची श्रेणी की वस्तु है। वह साक्षात् दर्शन है। कला का काव्य में भी स्थान है। तब वह काव्यानुभूति के कौशलपूर्ण प्रकाशन का नाम-मात्र हो जाता है। छंद, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति और कथानक कला है, कौशल-विशेष काव्यांग है, रस नहीं, काव्य नहीं। शुद्ध काव्य मे आत्मानुभूति को प्रधानता है, कौशलमय आकारों या प्रयोगों की नहीं। इस प्रकार कला और काव्य मे संबंध स्थापित हो जाता है। काव्य कला-निरपेक्ष है। कला काव्य-निरपेक्ष है। परन्तु काव्य और कला का सहजानुभूति द्वारा समन्वय उदात्त कवि के लिए नैसर्गिक बात है।

काव्य की परिभाषा देते हुए प्रसाद लिखते हैं—

"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक ज्ञान-धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और

विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्ति होती है वह निःसन्देह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेम और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।" अतः उनके अनुसार काव्य कवि की संकल्पात्मक, संश्लेषण-प्रधान अनुभूति का नाम है। इसी अनुभूति की मौलिकता, अमौलिकता, शिथिलता, तीव्रता कवि और महाकवि का भेद स्थापित करती है। कवि कवि का अंतर यही होता है।

अत: प्रसाद के अनुसार काव्य का अध्ययन इस प्रकार हो सकेगा :

१—कवि की मूल अनुभूति की खोज।

२—देखना कि उनमें संकल्पात्मकता कितनी है, मौलिकता कितनी है, तीव्रता कितनी है।

३—काव्यशरीर की जाँच।

(क) अलंकार, व्यंजना, वक्रोक्ति आदि का प्रयोग।

(ख) विशिष्ट पद-रचना।

४—देखना कि काव्य-शरीर मूल अनुभूति को सुन्दरता से वहन करता है या नहीं।

५—काव्य में रसात्मकता का अनुभव।

६—प्रतीकों का प्रयोग। 'प्रसाद' के अनुसार प्रत्येक युग की काव्यानुभूति युग के अनुसार अपने प्रतीक चुन लेती है और उन्हीं में रसात्मक रूप से प्रगट होती है।

## २—काव्य

काव्य के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण हमने पीछे दिया है। इसके अनुसार काव्य की सत्ता स्वयं है। वह कला-निरपेक्ष है। कवि की संकल्पनात्मक अनुभूति का प्रकाशन ही काव्य है। यह प्रकाशन सुन्दर हो, संगीतात्मक हो, छन्दबद्ध हो, कला (कौशल)-पूर्ण हो, तो दूसरी बात है। वास्तव में काव्य के अंतर प्रसाद केवल

पाठ्य-काव्य की ही बात कर रहे हैं। आरम्भिक पाठ्य-काव्य शीर्षक निबंध में उन्होंने भारतीय कविता के विकास की रूपरेखा उपस्थित की है। काव्य के दो भेद हैं— नाटक और श्रव्य (पाठ्य) काव्य। नाटक अभिनयात्मक काव्य है, पाठ्य काव्य वर्णनात्मक। उनके अनुसार नाटक की आत्मा रस है, परन्तु पाठ्य-काव्य में जहाँ कवि अपरोक्ष अनुभूतिमय हो जाता है, वहाँ ही वर्णनात्मक अनुभूति रस की कोटि तक पहुँच जाती है। वर्णनात्मक वस्तु है 'इदं'। रसात्मक काव्य द्वारा 'इदं' को 'अहं' के समीप लाया जाता है। "वर्णनों से भरे महाकाव्य में जीवन और उसके विस्तारों का प्रभावशाली वर्णन आता है। उसके सुख-दुःख, हर्ष-क्रोध, राग-द्वेष का वैचित्र्यपूर्ण आलेख्य मिलता है।" उसमें जीवन-तत्त्व को समझने का उत्साह रहता है। नाटक और पाठ्य-काव्य में एक दूसरा अंतर भी है। "वैदिक से लेकर लौकिक तक ऐसे श्रव्य-काव्यों का आधार होता था इतिहास। जहाँ नाट्य में अभ्यन्तर की प्रधानता होती है, वहाँ श्रव्य में बाह्य वर्णन की मुख्यता अपेक्षित है। वह बुद्धिवाद से अधिक सम्पर्क रखने वाली वस्तु है; क्योंकि आनन्द से अधिक उसमें दुःखानुभूति की व्यापकता होती है। और वह सुनाया जाता है, जनवर्ग को अधिकाधिक कष्ट-सहिष्णु, जीवन-संघर्ष में पटु तथा दुःख के प्रभाव से परिचित होने के लिए। नाटकों की तरह उसमें रसात्मक अनुभूति, आनन्द का साधारणीकरण न था। घटनात्मक विवेचनाओं की प्रभावशाली परंपरा में उत्थान और पतन की कड़ियाँ जोड़ कर महाकाव्यों की सृष्टि हुई थी, विवेकवाद को पुष्ट करने के लिये।"

श्रव्य-काव्य के दो विभाग हो सकते हैं—काल्पनिक अर्थात् आदर्शवादी, वस्तुस्थिति अर्थात् यथार्थवादी। भारतीय पाठ्य-काव्यों में रामायण-प्रभृति काव्य आदर्शवादी हैं। रामायण के चरित्रों में आदर्श की कल्पना पराकाष्टा तक पहुँच गई है। इसके

विपरीत महाभारत यथार्थवादी काव्य है। चरित्रों की दुर्बलताएँ उसकी विशेषता है।

प्रसाद ने हिंदी काव्य-साहित्य-परंपरा को भी आदर्श और यथार्थवाद के मापदंड पर परखा है। पिछले युग मे हमारा काव्य नाट्याश्रित हो गया। हमने मुक्तको मे रस भरने की हास्यास्पद चेष्टा की। नाटिकाएँ जिनसे पिछले काल का साहित्य भरा पड़ा है, नाटकोपयोगी वस्तु है। वृत्तियाँ कैशिकी, भारती आदि भी नाट्यानुकूल भाषाशैली के विश्लेषण है। वे हिन्दी काव्य-साहित्य-धारा का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं :—

(१) आदर्शवादी साहित्य—तुलसी का सुधारवादी काव्य।
(२) रहस्यात्मक साहित्य।
 (क) सिद्धों का आनन्दवादी काव्य।
 (ख) संतो का बुद्धिवादी काव्य।
 (ग) सूफियो का प्रेमपरक काव्य।
 (घ) कृष्ण-कवियो का प्रेम, विरह और समर्पण वाला काव्य।
(३) शास्त्रवादी साहित्य—रीतिकाव्य जिसमे नाटको के अंगो को लेकर श्रव्य-काव्य का विस्तार किया गया।
(४) यथार्थवादी काव्य—आधुनिक काव्य जिसका प्रारंभ हरिश्चंद्र से होता है।
(५) नूतन रहस्यवादी काव्य—छायावाद या आधुनिक काव्य जिसमे व्यक्तिवाद की प्रमुखता थी।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रसाद की काव्य-संबंधी जिज्ञासा सदैव जाग्रत रही और उन्होने भारतीय काव्य-परंपरा मे समीक्षक के रूप मे भी योग दिया। उन्होने काव्य की विभिन्न धाराओं को फिर से आँका और 'मिथ्या रहस्यवाद', 'मिथ्या

आदर्शवाद' जैसे काव्य के उदाहरण देकर बताया कि किसी भी वर्ग का काव्य शुद्ध स्वानुभूति से हटकर 'मिथ्या' हो जाता है।

## ३—रस

प्रसाद काव्य को कवि की संकल्पात्मक अनुभूति मानते हैं। रस संकल्पात्मक अनुभूति से कवि को 'आनन्द' की प्राप्ति होती है। यही आनन्दानुभूति ही 'रस' है। प्रारम्भ में कवि और ऋषि एक ही व्यक्ति होता था। परन्तु जब धर्म-नीति धर्म-पंडितों, स्मृतिकारों और अध्यात्म दार्शनिकों एवं साधकों की सम्पत्ति हो गये, तो शुद्ध काव्य रस की व्याख्या शुरू हुई। प्रारंभ का काव्य नाटक था, अतः नाटकों को ही सब से पहले काव्य कहा गया और आत्मा की अनुभूति को उसका 'रस' बताया गया। अभिनवगुप्त के अनुसार—

आस्वादनात्माऽनुभवोरसः काव्यार्थे मुच्यते।

'नाटकों में भरत के मत से चार ही मूल रस हैं—शृङ्गार, रौद्र, वीर और वीभत्स। इनमें अन्य चार रसों की उत्पत्ति मानी गई। शृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत, रौद्र से करुण और वीभत्स से भयानक।' काव्यानन्द के लिए रसात्मक अनुभूति की आवश्यकता मानी गई। यह रसात्मक अनुभूतिजन्य आनन्द ब्रह्मानन्द से अलग वस्तु होने पर भी ब्रह्मानन्द के समान था।

रसानुभूति के लिए भरत ने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों के संयोग का निदान किया। 'विभावानुभाव व्यभिचारि परिवृत्त, स्थायीभावो रसनाम लभते' (नाट्यशास्त्र अ० ७)। इसके बाद तो रसदृष्टि को इन्हीं रसतत्त्वों के विश्लेषण एवं व्याख्या में सीमित कर दिया गया।

प्रसाद रसवाद और अलंकारवाद का इतिहास उपस्थित करते हुए रस को शुद्ध धर्मदृष्टि एवं आनन्दवादी काव्यदृष्टि से जोड़ते हैं और अलकारवाद का संबंध पौराणिकों से। "इधर

विवेक या बुद्धिवादियों की वाङ्मयी धारा दर्शनों और कर्म-पद्धतियों तथा धर्मशास्त्रों का प्रचार करके भी, जनता के समीप न हो रही थी। उन्होंने पौराणिक कथानकों के द्वारा वर्णनात्मक उपदेश करना आरम्भ किया। उनके लिये भी साहित्यिक व्याख्या की आवश्यकता हुई। उन्हें केवल अपनी अलंकारमयी सूक्तियों पर ही गर्व था; इसलिये प्राचीन रसवाद के विरोध में उन्होंने अलंकारमत खड़ा किया, जिसमें रीति और वक्रोक्ति इत्यादि का भी समावेश था।" इन लोगों के पास रस जैसी कोई आभ्यन्तरिक वस्तु न थी। अपनी साधारण धार्मिक कथाओं में वे काव्य का रंग चढ़ा कर सूक्ति, वाग्विकल्प और वक्रोक्ति के द्वारा जनता को आकृष्ट करने में लगे रहे। बाद को आचार्यों का एक दल ऐसा उठ खड़ा हुआ जिसने पौराणिकों की मान्यताओं के सहारे काव्य की नई परख शुरू की। भामह ने अलंकार को प्रधानता दी, दण्डि ने रीति को महत्त्व दिया। सौन्दर्यबोध के आधार पर अलंकारों और शब्द-विन्यास कौशल की परीक्षा होने लगी। एक वर्ग ने वाग्विकल्प को भी अलंकार में मान लिया। इस प्रकार श्रव्य-काव्य की अलोचना के तीन आधार हुए: (१) रीति, (२) अलंकार, (३) वक्रोक्ति। इन अलंकारवादी आचार्यों ने रस को भी एक तरह का अलंकार माना और उसे रसवद् अलंकार कहा। 'शब्द या वाक्य' को काव्यानुभूति की इकाई मान कर—"वाक्यं रसात्मकं काव्यं", "रमणीयार्थ प्रतिपादकं शब्दः काव्यम्" जैसी सूक्तियाँ चल पड़ी। कुछ आगे बढ़कर पंडित जगन्नाथ ने कहा कि अर्थ से काव्य का कोई संबंध नहीं, शब्द मात्र ही काव्य है। अतः रसपूर्ण अनुभूति को छोड़कर वाक्वैचित्र्य को ही काव्य की आत्मा माना जाने लगा। काव्य का अर्थ हुआ कुतूहल। भामह, दण्डि, वामन, उद्भट प्रभृति आचार्यों का यही दृष्टिकोण रहा। इन आचार्यों ने तर्कप्रधान विकल्पात्मक आलोचनाशास्त्र की

स्थापना की। 'ध्वन्यालोक' की टीका में अभिनवगुप्त ने रस को भी अध्ययन का विषय बनाया। उसने कहा—काव्य के दो प्रकार है, स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति रस का विषय है।

परन्तु रस की महत्ता कम नहीं थी और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। अतः रस को श्रव्यकाव्योपयोगी बनाने के लिए कई उपाय किये गये। भरत ने रस के लिए सात्विक, आङ्गिक, वाचिक और आहार्य्य इन चारों क्रियाओं की व्यवस्था की थी। उनकी दृष्टि अभिनय-प्रधान नाटक पर थी। श्रव्य-काव्य में केवल 'वचन' के बल पर रस की स्थापना हो सकती थी। भट्टनायक ने साधारणीकरण का सिद्धान्त प्रचारित किया जिसके अनुसार रस न नट में है, न सामाजिक मे, न नायक में, यह सामान्य रूप से लोक मे उसी प्रकार प्रतिष्ठित है जिस प्रकार चेतनता। इस प्रकार नाटक के रस को काव्य की सामान्य भूमि पर उतारा गया।

'ध्वनि'-वादी आचार्य श्री आनन्दवर्द्धन ने एक दूसरी प्रकार अलकारवाद और रसवाद में समझौता किया। उन्होने कहा, रस और अलंकार दोनो व्यंजित होते हैं। ध्वनि ही प्रधान है। ध्वनि के तीन भेद हैं। रसध्वनि, अलकारध्वनि, वस्तुध्वनि। इनमें रसध्वनि प्रधान है। इस प्रकार एक नये ढङ्ग से काव्य में रस की महत्ता स्थापित हुई, यद्यपि उसे व्यंग्य माना गया। आनन्द-वर्द्धन के अनुसार प्रबंधकाव्य में रस की प्रतिष्ठा हो सकती थी, परन्तु मुक्तक काव्य के विषय मे रस की निबंधना कठिन बात थी।

पश्चात् रस की आध्यात्मिक व्याख्या भी हुई। आचार्यों ने स्थिर किया कि वासनात्मक रति आदि वृत्तियाँ ही साधारणीकरण

द्वारा भेद-विगलित हो जाने पर आनन्द-स्वरूप हो जाती हैं। उनका आस्वाद ब्रह्मास्वाद के तुल्य होता हैं। काव्यानन्द को 'समाधि-सुख' कहा गया है। यह निश्चित हुआ कि चित्तवृत्तियों की आत्मानंद में तल्लीनता समाधि-सुख ही है। साहित्य मे भी दार्शनिक परिभाषाओं का प्रचलन हो गया और पंडित जगन्नाथ ने 'रसोवैसः, रसंह्येव लब्ध्वाऽनन्दी भवति' कहकर रस को ब्रह्मानंद के कैलाश-शिखर पर पहुँचा दिया।

भरत ने 'शांतरस' को प्रधान माना था। यह शांतरस निस्तरङ्ग, निर्विकार महोदधि है। अन्य रस तरंग मात्र हैं। भावों के आलोड़न-विलोड़न है। परन्तु बाद के बुद्धिवादी साहित्यिकों ने शृङ्गार को ही अधिक महत्त्व दिया। वही रसराज माना गया।

परन्तु आध्यात्मिकों ने भी रस को ग्रहण किया। 'भक्ति' को भी रस माना गया। साहित्य में जो शृङ्गार रस था, उसे अध्यात्म-वादियों ने 'मधुर रस' और 'उज्ज्वल रस' कहा। मध्य-युग मे रागात्मिका भक्ति का विशेष विकास हुआ और हास्य, करुण आदि प्राचीन रस गौण हो गये और दास्य, सख्य और वात्सल्य आदि नये रसों की सृष्टि हुई। रस अद्वैताश्रित भाव है। शैवागमों की अद्वैतभक्ति का आधार 'मधुररस' होना संभव था। परन्तु मध्ययुग की भक्ति द्वैतभावना पर आश्रित थी। अतः इस द्वैतभाव : भक्ति के आधार पर रस की व्याख्या अस्पष्ट एवं रहस्यमूलक हो गई।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रसाद ने पहली बार रस-सिद्धांत का विकास हिन्दी समीक्षकों के सामने रखा। उन्होंने दर्शन, साहित्य और भक्ति की तीन प्रवृत्तियों के भीतर रस की स्थापना के इतिहास की खोज की। रस-सम्बन्धी इस ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव मे हम अपने काव्य के साथ पूर्णतयः न्याय नहीं कर

सकते। भक्ति-साहित्य की परख के संबंध में जो उच्छृङ्खलता फैली हुई है, उसका कारण यही ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव है। मध्ययुग के कृष्ण-भक्तों ने 'रस' को अध्यात्मपरक बना दिया था। यहाँ द्वैतभावना की प्रधानता थी। मधुर, दास्य, सख्य, वात्सल्य, शांत, रहस्य। इस प्रकार नये रसों की सृष्टि हुई। इस मधुर सम्प्रदाय मे जिस भक्ति का परिपाक रस के रूप मे हुआ, उसमें परकीया प्रेम का महत्त्व इसीलिए बढ़ा कि इन भक्तो ने श्रुतिपथ (आर्यपथ) को तोड़कर समाज-नियम निरपेक्ष प्रेमाभक्ति की नियोजना की थी। जीव और ईश की भिन्नता और विवेकहीन अवैधा प्रेमाभक्ति की महत्ता स्थापित करना ही परकीया भावना का काम था। भक्तो ने इन नए रसो को प्रेममूलक रहस्य बना दिया और यह रहस्य भी गोप्य माना। आनंद का स्थान चिर विरहोन्मुख प्रेम ने ले लिया। इसीलिए भक्तिकाव्य मे शुद्ध काव्य-रस ढूँढना हास्यास्पद है और इससे भ्रांति होना संभव है।

## ४—रहस्यवाद

प्रसाद स्वयं रहस्यवादी कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। अतः रहस्यवाद के संबंध में उनके विचार उपादेय है।

रहस्यवाद की परिभाषा वे इस तरह देते है :

(१) काव्य मे आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्यधारा रहस्यवाद है।

(२) वास्तव मे भारतीय दर्शन और साहित्य दोनो का समन्वय रस मे हुआ था। और यह साहित्यिक रस दार्शनिक रहस्यवाद से अनुप्राणित है।

(३) रहस्यवाद सच्चा भी हो सकता है और मिथ्या भी। प्रसाद ने मिथ्या रहस्यवाद का उदाहरण दिया है—

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरछाछ पै नाच नचावत

(४) प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद की हमारी अपनी दार्शनिक एवं काव्य-परंपरा है, परन्तु मध्ययुग मे मिथ्या रहस्यवाद का इतना प्रचार हुआ कि सच्चे रहस्यवादी पुरानी चाल की छोटी-छोटी मण्डलियों में लावनी गाने और चंग खड़काने लगे।

आधुनिक युग में रहस्यवाद को पश्चिम की वस्तु माना गया। आलोचकों ने कहा—रहस्यवाद का मूल उद्गम सेमेटिक धर्म-भावना है और इसीलिए वह भारत से बाहर की वस्तु है। प्रसाद ने 'रहस्यवाद' निबध में इसके विपरीत मत की स्थापना की है। उनका कहना है कि रहस्यवाद ( अनलहकवाद ) सेमेटिक धर्म भावना के विरुद्ध है एवं ईसा, मंसूर और सरमद आर्य अद्वैत धर्म-भावना से प्रभावित है।

ऋग्वेद के समय ही 'काम' ( प्रेम ) की प्रधानता मान ली गई थी। इसी वैदिक काम की, आगम शास्त्रों मे, कामकला के रूप मे उपासना भारत में विकसित हुई थी। यह उपासना सौन्दर्य, आनन्द और उन्मादभाव की साधना प्रणाली थी। पीछे १२वीं शताब्दी मे सिंध के संपर्क के साथ यह भावना ईरान और अरब पहुँची। हो सकता है, फारस में जिस सूफी धर्म का विकास हुआ, उस पर काश्मीर के साधकों का भी प्रभाव पड़ा है। अतः रहस्यवाद और प्रेमवाद को मूलतः भारतीय चिंतनपद्धति स्वीकार करते हुए प्रसाद कहते हैं : "शैवों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णों का माधुर्यभाव और उनके प्रेम का रहस्य तथा कामकला की सौन्दर्य-उपासना आदि का उद्गम वेदों और उपनिषदों के ऋषियों की वे साधना-प्रणालियाँ हैं, जिनका उन्होंने समय-समय पर अपने संघों में प्रचार किया था।"

"प्राचीन आर्य लोग सदैव से अपने क्रिया-कलाप मे आनन्द, उल्लास और प्रमोद के उपासक रहे। आनन्द भावना, प्रिय-कल्पना और प्रमोद हमारी व्यवहार्य वस्तु थी। आज की जातिगत निर्वीर्यता के कारण उसे ग्रहण न कर सकने पर, यह सेमेटिक है, कहकर संतोष कर लिया जाता है।" ऐतिहासिक विवेचना करते हुए प्रसाद आर्यों को दो चिंताधाराओं तक जाते हैं। आर्यों मे ऐकेश्वरवाद और आत्मवाद की दो चिंताधाराएँ अलग-अलग चल रही थीं। ऐकेश्वरवाद के प्रतिनिधि थे वरुण और आत्मवाद के इंद्र। इंद्र आत्मवाद और आनन्दवाद के प्रचारक थे। "वरुण को देवताओं के अधिपतिपद से हटना पड़ा, इंद्र के आत्मवाद की प्रेरणा ने आर्यों मे आनन्द की विचारधारा उत्पन्न की। फिर तो इन्द्र ही देवराजपद पर प्रतिष्ठित हुए। साहित्य मे आत्मबाद के प्रचारक इंद्र की जैसी चर्चा है, उर्वशी आदि अप्सराओ का जो प्रसग है, वह उनके आनन्द के अनुकूल ही है। बाहरी याज्ञिक क्रिया-कलापो के रहते हुए भी वैदिक आर्यों के हृदय में आत्मवाद और ऐकेश्वरवाद की दोनो दार्शनिक विचारधाराएँ अपनी उपयोगिता मे संघर्ष करने लगीं। सप्तसिन्धु के प्रबुद्ध तरुण आर्यों ने इस आनन्दवादी धारा का अधिक स्वागत किया।" जो ऐकेश्वरवादी आर्य इस आनन्दवाद को ग्रहण नहीं कर सके, वे असुर कहलाये। उन्होंने ही असीरिया का साम्राज्य स्थापित किया। सेमेटिक ऐकेश्वरवाद के वे ही आदि जनक हैं। स्वयं सप्तसिंधु के आर्यों का एक दल भी 'आत्मवाद' या 'आनन्दवाद' को पूर्णत: ग्रहण नहीं कर सका। उसने कर्म-काण्ड, चैत्यपूजा, अग्निहोत्र आदि कर्म जारी रखे। इस प्रकार वैदिक काल के बाद यही दो धाराएँ चलीं। इन व्रात्य और अयाज्ञिको ने ही विवेक-प्रधान, बुद्धिवादी, अपरिग्रही तीर्थंकर मत को जन्म दिया। ये दुःखातिरेकवादी, आत्मवाद में आस्था

न रखनेवाले और वाह्य उपासना में चैत्यपूजक थे। इस अनात्मवाद की प्रतिक्रिया से भक्तिवाद का जन्म हुआ और किसी त्राणकारी पराशक्ति की खोज की जाने लगी।

इस प्रकार भारत के प्राचीनतम इतिहास के समय से दो धाराएँ बराबर चली आती है; एक, विकल्पात्मक बुद्धिवाद की धारा; दो, आनंदवाद की धारा। कठ, पांचाल, काशी और कोशल आनन्दवादियो के केन्द्र थे। मगध का संबध व्रात्यो से था। सदानीरा के उसपार का देश दार्शनिक चिंतन और दुःखवाद की जन्मभूमि रहा है।

उपनिषदो के ऋषियो से आरम्भ होकर सिद्धो और संतों तक आनन्दरस की साधना की एक धारा चलती रही। उपनिषदो के ऋषियो, आगमवादियो, टीकाकारो, योगियो और सिद्धो ने इस अद्वैत आनन्द को भली-भॉति विकसित किया। रामभक्त तुलसी और कृष्णभक्त सूरदास भी इस रहस्यवादी धारा के प्रभाव से नही बच सके। परन्तु इनमें आनंद अमिश्रित नहीं रहा। सतो ने राम की बहुरिया बनकर प्रेम और विरह की कल्पना कर ली। भागवत के कुछ अध्यायो (वेणु-वादन, भ्रमरगीत, वनगमन) से इंगित लेकर उस पर नायक-नायिका के मिलन-वियोग का आवरण चढ़ाकर चंडीदास और विद्यापति ने महारास (आत्मा-परमात्मा के मिलन) की वीथिका के लिए वियोग-दुःख का आयोजन किया। इस प्रकार मध्ययुग मे शुद्ध आनंदवाद के सुर दब गये। "किन्तु सिद्धों की रहस्य सम्प्रदाय की परंपरा में तुकनगिरि और रसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी मे आनन्द और अद्वयता की धारा बहाते रहे।"

आधुनिक रहस्यवाद के संबध मे उनका मत है—"वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमे

अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से सम्बन्ध करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमे सम्मिलित है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी संपत्ति है, इसमे सन्देह नही।"

## ५—यथार्थवाद

यथार्थवाद को प्रसाद वर्तमान युग की एक प्रधान प्रवृत्ति मानते है। दूसरी प्रवृत्ति है 'छायावाद'। उनकी विवेचक दृष्टि मे हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय वेदना के साथ ही जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण आरम्भ किया था। 'प्रेम-योगिनी' हिंदी मे इस ढंग का पहला प्रयास है। और 'देखो तुमरी कासी' वाली कविता को भी मै इसी श्रेणी की समझता हूँ। प्रतीक-विधान चाहे दुर्बल रहा हो, परन्तु जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयत्न हिन्दी मे इसी समय प्रारभ हुआ था। वेदना और यथार्थवाद का स्वरूप धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा।"

"यथार्थवाद की विशेषताओं मे प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य मे माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावो का वास्तविक उल्लेख।" व्याख्या करते हुए वे यथार्थवाद की विशेषता यह भी बताते है—

दैवीशक्ति से तथा महत्त्व से हटकर अपनी क्षुद्रता तथा मानवता मे विश्वास होना, संकीर्ण संस्कारो के प्रति द्वेष होना। वे कहते है—"जाति के जो धार्मिक और साम्प्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण-स्वरूप बन जाते है, उन्हें हटाकर अपनी प्राचीन वास्तविकता को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की

## ६—छायावाद

प्रसाद की 'छायावाद' की विवेचना साहित्य-सम्बन्धी उनकी सारी स्थापनाओं में सबसे मौलिक है। उनका कहना है कि आधुनिक कविता की छायावादी धारा रीतिकालीन परंपरा की प्रतिक्रिया है जिसमे वाह्यवर्णन की प्रधानता थी। इसे हम वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति कह सकते है। छायावाद की कविता के सबंध में वे लिखते है—"ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यंतर सूक्ष्म भावो की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावो के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना सफल रही। उनके लिये नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था। हिंदी मे नवीन शब्दो की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिये प्रयुक्त होने लगी।"[१]

इस प्रकार प्रसाद 'छायावाद' को प्रधानता शब्द, शब्दभंगिमा और शैली के क्षेत्र में एक क्रांति मानते है। वे इसे रहस्यवाद से अलग वस्तु समझते हैं। यह तो ठीक है कि आधुनिक काव्य की अभी अपनी भावदिशाएँ विकसित हो रही थीं :

(१) वेदना की प्रधानता।

(२) स्वानुभूति मयी अभिव्यक्ति (व्यक्तिवाद)।

(३) भावो की सूक्ष्म व्यंजना।

परन्तु वाह्यांग में भी कम महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न था। वाह्यांग में थी :

(४) नवीन पदयोजना।

(५) नवीन शैली।

(६) नया वाक्य-विन्यास जिसमे सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भाव में एक तड़प उत्पन्न कर दे।

(७) आभ्यंतर वर्णन के लिए शब्दों की नवीन भंगिमा।

प्रसाद ने छायावाद के इसी वाह्य-पक्ष की ओर ही अधिक वल दिया

है। जब कवि 'वाह्य उपाधि से हटकर आन्तर हेतु की ओर प्रेरित हुए', तो उन्हें अभिव्यक्ति का एक निराला ढङ्ग आविष्कृत करना पड़ा। 'इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई, हिंदी में वे पहले से कम समझे जाते थे; किंतु शब्दो मे भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है।' इसी स्वतंत्र शक्ति की साधना छायावादी कवियो को मान्य हुई।

अभिव्यक्ति के इस नए ढङ्ग की प्रसाद ने प्राचीनो की उक्तियो के सहारे व्याख्या की है। उन्होंने बताया है, यह कोई नई वस्तु नहीं। भारतीय काव्य-परंपरा मे बराबर इसका प्रयोग रहा है और आनन्दवर्द्धन और कुन्तक जैसे आचार्यों ने साहित्यशास्त्रों में इसकी व्याख्या की है। कवि अर्थ से कुछ अधिक प्रगट करना चाहता था। इसके लिए वह एक नई शैली पकड़ता है। अर्थ से अधिक यह जो है, उसे प्राचीन आचार्यों ने 'लावण्य', 'छाया' 'विच्छित्ति', 'वक्रता', 'वैदग्ध भंगी' नाम से प्रगट किया है। इसे 'ध्वनि' भी कहते है। "यह ध्वनि प्रबन्ध, वाक्य, पद और वर्ण में दीप्त रहती है। कवि की वाणी मे यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा के भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी-सुलभ श्री की वहिन ही है, घूँघट वाली लज्जा नहीं। संस्कृत-साहित्य मे यह प्रतीयमान छाया अपने लिए अभि-व्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है। इस दुर्लभ छाया का सस्कृत काव्योत्कर्ष-काल मे अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमे शाब्दिक प्रयोगो की भी थी, किन्तु आन्तर अर्थवैचित्र्य को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभि-व्यक्ति के उदाहरण संस्कृत मे प्रचुर है। उन्होंने उपमाओ मे भी आन्तर सारूप्य खोजने का प्रयत्न किया था। निरहङ्कार मृगांकं, पृथ्वी गतयौवना, संवेदन मिवाम्बरं, मेघ के लिए जनपदवधू

लोचनैः पीयमानः या कामदेव के कुसुम शर के लिए विश्वसनीयमायुधं, ये सब प्रयोग वाह्य सादृश्य से अधिक आन्तर सादृश्य को प्रकट करने वाले हैं।" "इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक है।" प्रसाद कहते हैं—"प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी मे जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढङ्ग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिए अत्यंत आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। वाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।"

छायावाद काव्य पर आलोचकों ने यह दोष लगाया है कि वह अस्पष्ट है, इसका निवारण प्रसाद ने किया है: "कुछ लोग इस छायावाद में अस्पष्टता का रंग भी देख पाते हैं। हो सकता है कि जहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो, वहाँ अभिव्यक्ति विश्रृङ्खल हो गई हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, परन्तु सिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट छाया-मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है।" परन्तु प्रसाद छायावाद और रहस्यवाद को पर्यायवाची शब्द भी नहीं मानते: "मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिंब है; इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धांत भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलंबन, स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्यधारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से संबंध रखनेवाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।"

वे छायावाद की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—'छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है।'

प्रसाद ने काव्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह इधर-उधर बिखरा पड़ा है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे उच्चकोटि के समीक्षक थे और उनकी मान्यताएँ साहित्यिकों और आलोचकों के मनन करने की वस्तु है। नीचे हम उनकी मान्यताओं को क्रमबद्ध रूप से रखते है :

## १—कला

पश्चिमी विचारकों की भाँति प्रसाद मूर्त्त और अमूर्त्त कला का भेद नहीं मानते। उनकी दृष्टि मे 'कला' अनुकरण नहीं है, वह आत्मानुभूति है, भीतर और बाहर आनन्द की साधना है। कला मे 'इद्' 'अहं' हो जाता है। भारतीय दृष्टि मे कला उप-विद्या है। काव्य उससे ऊपर। कला कौशल मात्र है। काव्य के वाह्याङ्ग से इसका सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु काव्य का आभ्यंतर कला (कौशल) निरपेक्ष है। छंद, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि काव्याग कला के विषय हैं। अतः कला के भीतर वर्गरूप मे काव्य की स्थापना का प्रश्न ही नही उठता।

## २—काव्य

काव्य विज्ञान का विपरीत है। जहाँ विज्ञान में विश्लेषण या विकल्प है, वहाँ काव्य मे संश्लेषण। प्रसाद के शब्दो मे

'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है।' यह अनुभूति मौलिक और तीव्र होनी चाहिये।

प्रसाद के अनुसार काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार होगा—
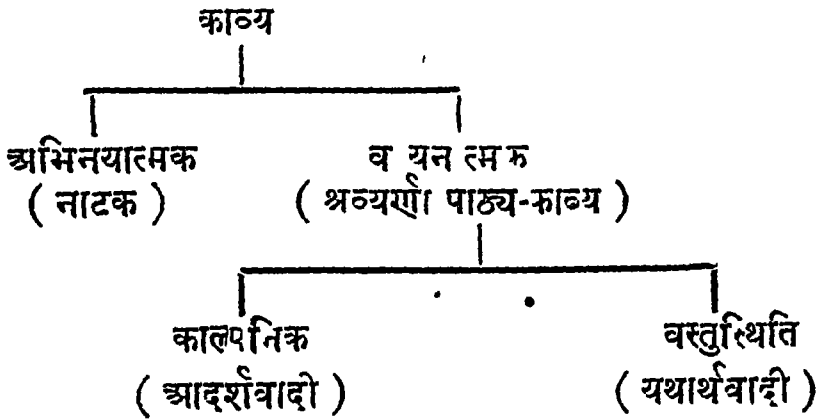
रस-दृष्टि से काव्य के और भी भेद हो सकते हैं—

१—आनन्दवादी।

२—बुद्धिवादी।

३—रहस्यवादी।

इस प्रकार प्रसाद ने प्रमुख मानव-प्रवृत्तियों के आधार पर ही काव्य की समीक्षा की चेष्टा की है।

## ३—रस

कवि की संकल्पात्मक अनुभूति से जिस 'आनन्द' की सृष्टि होती है, उसे ही 'रस' माना गया है। प्रसाद ने 'रस' की ऐतिहासिक विवेचना की है और बताया है कि दर्शन, काव्य और धर्म के अनुसार 'रस' शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न रहे हैं। शुद्ध काव्य-रस की विवेचना की ओर समीक्षकों की दृष्टि गई ही नहीं है। उन्होंने एक बड़ी क्रांतिकारी सूझ उपस्थित की है जो मध्ययुग के काव्य को नई परख देगी। उन्होंने रस के ये विभाजन किये हैं—
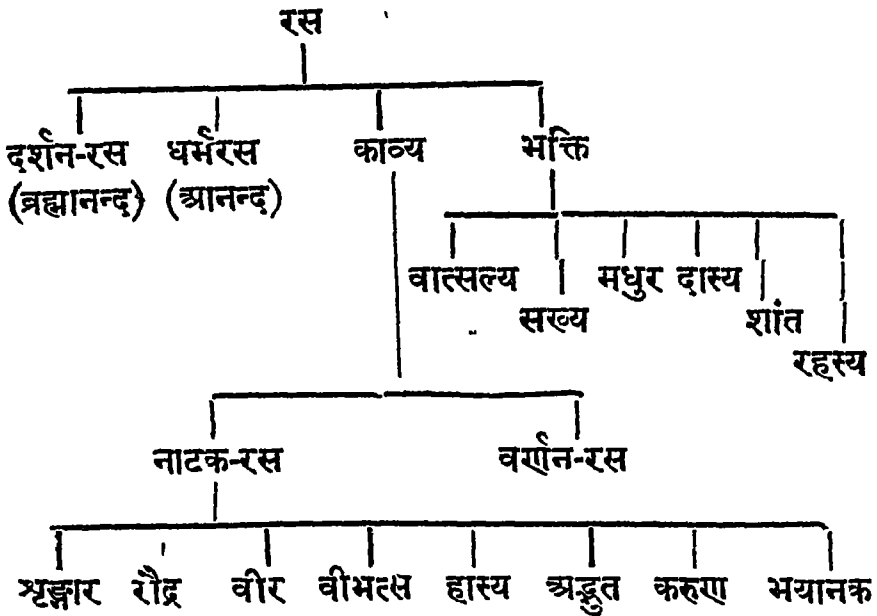
इस प्रकार हम प्रसाद की रसदृष्टि को सर्वाङ्गीण पाते है। किसी 'वाद' विशेष तक सीमित रहने का आग्रह उनमे नही है। उनकी दृष्टि ऐतिहासिक होने के कारण व्यापक है।

## ४—रहस्यवाद

प्रसाद ने रहस्यवाद के भेद इस प्रकार माने है :
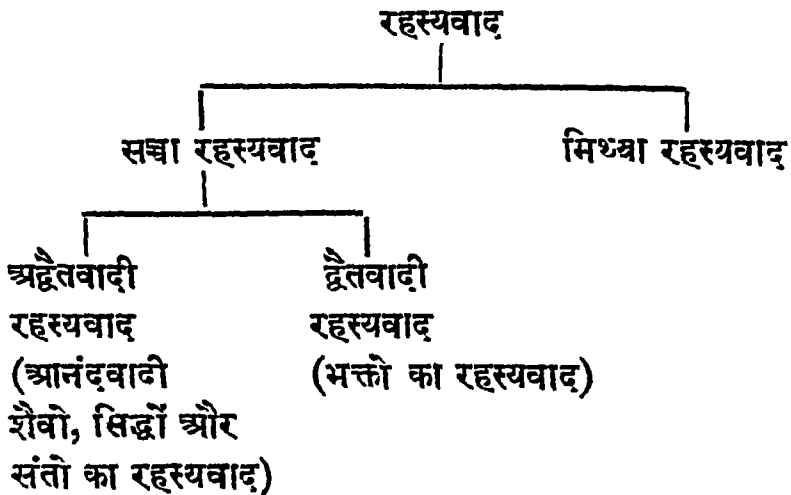
जब साहित्य में रहस्यवाद रूढ़ि बन जाता है, तो उसके साथ बहुत कुछ मिथ्या रहस्यवाद के रूप में हमारे सामने आता है। हमारे साहित्य में भी ऐसे मिथ्या रहस्यवाद की कमी नहीं है। प्रसाद आधुनिक रहस्यवादी काव्य को एकदम परंपराविहीन विदेशी वस्तु नहीं मानते। वे आधुनिक रहस्यकाव्य का आधार "अद्वैतवाद" मानते हैं जिसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। इस प्रकार उन्होंने आज की रहस्यवादी कविता को भारत की निजी रहस्यवादी काव्यसंपत्ति से जोड़ने का श्रेय प्राप्त किया है।

## ५—यथार्थवाद

प्रसाद यथार्थवाद को आदर्शवाद का विरोधी मानते हैं। परन्तु रहस्यवाद और छायावाद से उसका कोई विरोध नहीं मानते। उनके अनुसार हमारा सारा साहित्य मूलतः आदर्शवादी रहा है। यथार्थवाद बाबू हरिश्चन्द्र से आरम्भ होता है। यह यथार्थवाद आधुनिक काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है।

६—प्रसाद ने 'छायावाद' की विशद विवेचना की है। उनके अनुसार 'छायावाद' अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट शैली मात्र है। रहस्यवाद से उसका कोई अनिवार्य संबंध नहीं। उन्होंने अभिव्यक्ति के इस नए ढङ्ग को प्राचीन काव्य में भी खोज निकाला है और आचार्यों की साक्षी ला खड़ी की है। उनके अनुसार छायावाद की विशेषताएँ हैं—

(१) ध्वनि, (२) लक्षणा, (३) सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान, (४) कथन की वक्रता, (५) स्वानुभूति।

इस तरह उन्होंने आधुनिक आलोचकों के उस वर्ग से मतभेद प्रगट कर दिया है जो छायावाद को रहस्यवाद का पर्यायवाची मानकर चलते है।

स्वयं प्रसाद के काव्य की परख पर इन स्थापनाओं का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। उनके अनुसार आधुनिक काव्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ है—

१—यथार्थवाद।

२—रहस्यवाद।

३—छायावाद।

यथार्थवादी काव्य के अंतर्गत वह सब काव्य आ जाता है जिसमे उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति है, व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख का उल्लेख है, मनोवैज्ञानिक अवस्था या सामाजिक रूढ़ियो का चित्रण है, स्त्रियो के प्रति नारीत्व का दृष्टिकोण है, या राष्ट्रीय भावना है। स्वयं प्रसाद के काव्य का बहुत थोड़ा भाग यथार्थवाद के अंतर्गत आता है। 'प्रलय की छाया' को हम इसके भीतर रख सकते है। प्रसाद का अधिकांश काव्य रहस्य या छायावाद के अंतर्गत आता है। प्रसाद शैव थे, आनन्दवादी कवि थे, इस दृष्टि से उनके सारे काव्य मे आनन्द और रहस्य की एक धारा बह रही है। 'लहर' की कितनी रचनाएँ सुन्दर रहस्यवादी काव्य है। परन्तु उनका आग्रह 'छायावाद' की ओर ही विशेष रूप से है, इसमे कोई भी संदेह नही है। प्रसाद काव्य मे 'छायावाद' का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'आँसू' है। जो आलोचक प्रसाद की छायावाद-सबंधी स्थापनाओ से परिचित नही है, वह इस सुन्दर कृति के साथ न्याय नही कर सकता। 'आँसू' के कुछ पद देकर हम इस बात को स्पष्ट करेंगे। कवि वेदना को संबोधित करता है—

सपनो की सुख छाया में<br>
जब तन्द्रालय ससृति है<br>
तुम कौन सजग हो आई<br>
मेरे मन में विस्मृति है

तुम ! अरे, वही हाँ तुम हो
मेरी चिर-जीवन-सगिनि
दुख वाले दग्ध हृदय की
वेदने ! अश्रुमयि रगिनि

जब तुम्हे भूल जाता हूँ
कुड्मल किसलय के छल मे
तब कूक हूक-सी बन तुम
आ जाती रंगस्थल में

बतला दो अरे, न हिचको
क्या देखा शून्य गगन मे
कितना पथ हो चल आई
रजनी के मृदु निर्जन में

कवि दुखविह्वल है। जब सब सुख की नींद सो रहे है, तब भी वह जाग रहा है। कौन उसे सजग कर रहा है ? वह तो जैसे भूल गया है ! सहसा उसे याद आई। यह तो वेदना है, उसकी चिरजीवन संगिनि ! (अश्रुमयि रंगिनि !) जैसे प्रयोग वेदना को मूर्त्त बना देते है। उसे आश्चर्य होता है—संसार के सुख छल मे (कुड्मल-किसलय के दल मे व्यंग्य है) जब वह भूल जाता है, तब भीतर से वेदना की हूक उठती है। इसके बाद वह मूर्तिमान वेदना से कई प्रश्न करता है जो संसार-व्यापी दुःख को भली भाँति व्यंजित कर देते है। वेदने ! तुम तो रजनी की इस निर्जनता मे न जाने कितनी दूर से चलकर यहाँ आई हो। जरा बताओ तो ! उधर शशि-किरणें हँस-हँस कर मकरद पान करती है, इधर कुमुद रोते है। प्रेमी जलनिधि आकाशचारी शशि को पाने में असफल है। शैल-मालाओ के भीतर भयंकर ज्वाला भरी पड़ी है ! यह सब तुमने क्या नहीं देखा ? कलियो का रसपान

कर कृतज्ञता भूल कर उड़ जाने वाले अलियो तुमने देखा है। जिनके आँसू भी सूख गये हैं, उन दुखियों को भी तुमने देखा है ? अंत में वह पूछता है—

सूखी सरिता की शय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलों में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी !
सूनी कुटिया कोने में
रजनी भर जलते जाना
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा हो फिर बुझ जाना

(इस पृथ्वी पर कैसी-कैसी करुण कहानियाँ चल रही हैं। ऐसी भी नदियाँ हैं जिनका जल सूख गया है, वह किनारे समेटे पड़ी है। ऐसे भी दीपक हैं जो सूनी कुटियों के किसी कोने में अपना थोड़ा-सा संबल मात्र स्नेह जला चुके है। फिर अज्ञात ही बुझ गये है ) इन प्रश्नों के पीछे कवि की अपनी कथा है। एक नूतन शैली में कवि अपने प्रेमी से कह रहा है, देखो तो ! यदि तुम्हें संसार का इतना दुःख, इतनी वेदना, इतना सर्वनाश देखना है, तो इस मेरे हृदय को देखो ! व्यंजना की यह नई शैली हिंदी काव्य को प्रसाद की मूल्यवान देन है।

— —

# ११

# अंतिम अध्याय

पीछे के पृष्ठों में हमने कवि प्रसाद और उनके काव्य के सम्बन्ध मे अपनी गवेषणा उपस्थित की है। प्रसाद आधुनिक हिंदी काव्य के एक प्रमुख स्तंभ है, अतः उनका अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। उनको भलीभाँति समझे बिना आधुनिक काव्य की रहस्यवादी और छायावादी धारा को समझना असंभव है।

प्रसाद ने जिस समय काव्य-रचना आरंभ की, उस समय ब्रजभाषा काव्य का प्रचार था उसी मे रचना होती थी, खड़ी बोली कविता मे ग्रहण की जाने लगी थी और सरस्वती (१९००) ने उसका प्रचार भी शुरू किया था, परंतु मैदान ब्रजभाषा के ही हाथ था। स्वयं काशी मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र का काव्य एक महान रूढ़ि बन गया था। यह काव्य ब्रजभाषा में था। इसकी अवहेलना प्रसाद के लिए असंभव था। अतः हम प्रसाद को भक्ति और प्रेम (शृङ्गार) को रचना से काव्य का आरंभ करते पाते हैं। उनकी सबसे पहलो प्रकाशित रचना यह है—

सावन आये विभोगिन को तन
आली अनंग लगे अति तावन
तावन हीय लगी अबला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन
छावन कैसे कहूँ मैं विदेस
लगे जुगनू हिय आग लगावन

गायन लगे मयूर कलाधर
झापि कै मेघ लगे बरसावन।
(भारतेन्दु, जुलाई १९०६)

इसके बाद 'इंदु' ( १९०९-१६ ) मे उन्होने व्रजभाषा के अनेक पद, सवैया, कवित्त दिये और उसमे नए भाव भी भरने का प्रयत्न किया। सॉनेट (चतुष्पदी) जैसे छद को व्रजभाषा रूप मे उपस्थित करने का साहस उन्हीं जैसे कवि को हो सकता था।

'इंदु' मे ही उन्होने खड़ी बोली की कविता लिखनी शुरू की और फिर धीरे-धीरे व्रजभाषा मे लिखना छोड़ दिया। पहले वह द्विवेदीयुग के कवियो से थोड़े प्रभावित जरूर हुए, परन्तु शीघ्र ही उन्होने अपना निश्चित पथ ग्रहण कर लिया और अभिव्यजना की एक नई शैली के आविष्कार का प्रयत्न किया। १९१३ ई० में रविबाबू की 'गीतांजलि' हिदी ससार के सामने आई और प्रसाद उससे प्रभावित हुए। काशी जैसे धर्मक्षेत्र मे रहते हुए शैव भक्तों के बीच मे पले प्रसाद आत्मसमर्पण और अदृश्य सत्ता की गहरी अनुभूति के सदेश के प्रभाव से बच सकते, ऐसा असंभव था। गीतांजलि का प्रभाव 'पत' और 'निराला' की कुछ कविताओ पर भी है, परतु यह प्रभाव कहीं भी अधिक नही है। हिन्दी के इन तीनों कवियो ने अलग-अलग दिशाएँ ग्रहण की और एक नये प्रकार के काव्य का सूत्रपात किया।

प्रसाद ने अभिव्यंजना की एक नई शैली निकाली और प्रेम, सौन्दर्य और आनद को अपना विषय बनाया। 'झरना' को छोड़ कर उनकी अन्य कविताओ पर रविबाबू का जरा भी प्रभाव नही है। उनकी अपनी शैली, अपनी मूर्त्तिमत्ता। 'पंत' ने अंग्रेजी के रोमांटिक (स्वच्छदतावादी) कवियो के काव्य का सहारा लिया और 'छाया', 'बादल', 'ज्योत्स्ना' जैसी कविताएँ लिखकर प्रकृति

और मानव के सहज-सुन्दर परन्तु रहस्यमय संबन्ध की ओर संकेत किया। पंत नारी-सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। जीवन की सभी छोटी-बड़ी भङ्गिमाओं के प्रति जितना प्रेम उनकी कविताओं में लक्षित है, उतना प्रेम अन्य स्थान पर नहीं मिलेगा। 'निराला' ने रविबाबू के प्रौढ़ काव्य से बल प्राप्त किया। हिन्दी के अन्य कवियों की संवेदना केवल 'गीतांजलि' तक सीमित रहती थी। रविबाबू की 'उर्वशी' जैसी विराट् चित्रपटी से वे परिचित नहीं थे। निराला ने उनके लिए एक नई परंपरा स्थापित की। 'विधवा' 'भिक्षुक' जैसी प्रतिदिन की संवेदनाओ को लेकर उन्होंने काव्य का सुन्दर प्रासाद खड़ा किया। उनकी classical प्रवृत्ति ने उन्हें 'राम की शक्ति-उपासना', 'शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार' और 'तुलसीदास' जैसे खंड काव्यो की ओर बढ़ाया। इस प्रकार 'गीतांजलि' का प्रभाव अधिक दिन तक टिक नहीं सका। कवियो की व्यक्तिगत रुचि और उनकी सीमाओं ने 'छायावाद' को रवि बाबू की 'गीतांजलि' की 'उच्छिष्ट' मात्र सामग्री होने से बचा लिया।

इन तीनो कवियो ने हमारी काव्य-परंपरा से हट कर एक नये काव्य की नींव डाली। जितनी बड़ी क्रांति 'छायावाद' काव्य ने की, उतनी बड़ी क्रांति हिंदी कविता के किसी भी युग में नहीं हुई थी। भाषा, भाव, शैली, व्यंजना—सभी मे शत प्रति शत क्रांति थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रगतिशील विचारक और आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे विचारशील आलोचक नए काव्य को परंपराभ्रष्ट और उच्छृंखल समझने लगे। कौन नहीं जानता कि आचार्य द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' के नाम से पंत की कविताओ का विरोध किया था और आचार्य शुक्ल ने 'रहस्यवाद' विषय पर एक वृहद् ग्रंथ लिखकर छाया-वादी कवियों को चुनौती दी थी। मई १९२७ की 'सरस्वती' में

द्विवेदी जी ने 'कवि किंकर' के नाम से पंत की वीणा की विरोधी आलोचना की थी, उन्होंने 'वीणा' के प्रकाशकों से आग्रह करके भूमिका का एक अंश निकलवा भी दिया था। पंत को भी वृद्ध द्विवेदी के व्यंग का उत्तर व्यंग से देना पड़ा था—

"व्यास, कालिदास के होते हुए, तथा सूर, तुलसी के अमर काव्यों के रहते हुए भी ये कवि यशोलिप्सु, कवित्वहंता छाया-वाद के छोकड़े, कमल-यमल, अरविंद-मलिंद आदि अनोखे-अनोखे उपनामों की लाङ्गूल लगा, कामा फुलिस्टापों से जर्जरित, प्रश्न-आश्चर्य-चिन्हों के तीरों से मर्माहत कभी गज-गज की लंबी, कभी दो ही दो अंगुल की, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, यतिहीन, छंदहीन, शब्द-अर्थ-तुकशून्य काली सतरों की चीटियों की टोलियाँ, तथा अस्पृश्य काव्य के गुह्याति-गुह्य कच्चे घरोंदे बना, ताड़पत्र, भोजपत्र को छोड़ बहुमूल्य कागज़ पर मनोहर टाइप में, अनोखे-अनोखे चित्रों की सजधज तथा उत्सव के साथ छपवा कर, जो 'विन्ध्यस्तरेत् सागरम्' की चेष्टा कर रहे है, यह सरा-सर इनकी हिमाक़त, धृष्टता, अहमन्यता, तथा 'हम चुना दीगरे नेस्ती' के सिवा और क्या हो सकता है ? घटानां मिर्यातुस्त्रि भुवन विधातुश्च्य कलहः।" इत्यादि

(भारतेन्दु भाग १, १९२८)

स्वयं प्रसाद को इस नए काव्य की व्याख्या करनी पड़ी। वे लिखते है—"× × अधिकांश महाशय × × × कविता-कर्म समझने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यों छन्द-विषयक अरुचि है ? इसका कारण यह है कि साम-यिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कविताएँ नहीं मिलती और पुरानी कविता को पढ़ना मानो महाकठिन-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस ढङ्ग की कविता बहुतायत से हो गई है×××

'शृङ्गार रस' की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई है इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजना-मयी अपने को भुला देने वाली कविताओ की आवश्यकता है। अस्तु धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्ति स्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली, धीर गभीर पद-विक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगो को अग्रसर होना चाहिए। अब दूर नही है, सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग कर रही है, और नवल रूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को भी लजावेगी, एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पचम स्वर मे ललकारेगी, भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।

('इंदु' कला २, किरण १, 'कवि और कवित्त')

इस महान विरोध के कारण इन छायावादी कवियो को अपने काव्य की व्याख्या करनी पड़ी। उन्हे अपनी प्रवृत्तियो को सुलझे रूप मे जनता के सामने उपस्थित करना पड़ा। इससे यह लाभ तो हुआ कि हम कवियो की भाव-धाराओं के संबंध मे आज अधिक जानते है और उनकी मन भावनाओ का उनकी कविताओं से सबन्ध स्थापित कर सकते है। पत ने लिखा :

१—कविता करने को प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिनका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मै घंटो एकांत मे बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। तब कभी मै आँखे मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्य-पट चुपचाप, मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज मे सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल कूर्माचल

की छायांकित पर्वत-श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमाचल को धारण की हुई है, और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाई हुई है, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर कुछ काल के लिए, भुला सकती है ! और शायद पर्वत प्रांत के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, 'पर्वत की तरह, निश्चय रूप से अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पना-जीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जन-भीरु भी बना दिया। यही कारण है कि जनसमूह से अब भी मैं दूर भागता हूँ, और मेरे आलोचकों का यह कहना कुछ अंशों तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगों के सामने आने में लजाती है।

२—दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्त्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह को दिशा बदल दी। मेरी निजी इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई। मनुष्य के जीवन के अनुभवों का इतिहास बड़ा ही करुण प्रमाणित हुआ। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थिपंजर।

३—किंतु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से जहाँ जीवन के नाम रूप गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि में भटकाता है, वहाँ वह छिलके में रस की तरह व्याप्त एक ऐसी सूक्ष्म संश्लेषात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्त को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने

मेरे मन को अस्थिर वस्तु-जगत् से हटा कर अधिक चिरंतन भाव-जगत् में स्थापित कर दिया।

४—व्यक्तिगत सुख-दु:ख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैने अपनी रचनाओं में वाणी नही दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है।

५—बाद की रचनाओं मे मेरे हृदय का आकर्षण मानव-जगत् की ओर अधिक प्रकट होता है।

६—'छायावाद' के पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रह कर केवल अलकृत संगीत बन गया था। द्विवेदीयुग के काव्य की तुलना मे छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौन्दर्यबोध और कल्पना मे पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था, और उसका भाव-शरीर द्विवेदीयुग के काव्य की परंपरागत सामाजिकता से पृथक हो गया था। किंतु वह नवयुग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमे व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र' की धारणा ( वास्तविकता ) नही आई थी। उसके 'हास-अश्रु आशाऽकांक्षा' 'खाद्य मधुमानी' नहीं बने थे। इसलिए एक ओर वह निगूढ़, रहस्यात्मक, भाव-प्रधान ( सबजेक्टिव ) और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनिक और आवरणमात्र रह गया। दूसरे शब्दो में नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने से पहले हिन्दी कविता, छायावाद के रूप मे, ह्रासयुग के वैयक्तिक अनुभवो, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियो, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओ संबंधी स्वप्नों, निराशाओ और संवेदनाओ

को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष की कठिनाइयों ने क्षुब्ध होकर, पलायन के रूप मे, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर, भीतर-बाहर मे, सुख-दु:ख में, आशा-निराशा, सयोग-वियोग के द्वन्द्वों मे सामञ्जस्य स्थापित करने लगी।

७—पल्लवकाल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों—मुख्यत. शैली, वर्डसवर्थ, कीट्स, और टेनीसन—से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौन्दर्यबोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है। रविबाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीनयुग की, सौन्दर्यकल्पना ही मे परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगन रहा है। इस प्रकार मै रवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ। और यदि लिखना एक unconcious-concious process है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का यत्र-तत्र उपयोग भी किया है, और उसे अपने विकास का अग बनाने की चेष्टा की है।

८—छायावादी कवियों पर अतृप्त वासना का लांछन मध्य-वर्गीय ( बूर्ज्वा ) मनोविज्ञान ( डेप्थ साइकॉलोजी ) के दृष्टिकोण से नही लगाया जा सकता। भारत के मध्ययुग की नैतिकता का लक्ष्य ही अतृप्त वासना और मूक वेदना को जन्म देना रहा है, जिससे बंगाल के वैष्णव कवियों के कीर्तन एव सूर-मीरा के पद भी प्रभावित हुए है। संसार के सभी देशों की सस्कृतियॉ अभी सामन्तयुग की नैतिकता से पीड़ित हैं। हमारी क्षुधा ( संपत्ति ) काम ( स्त्री ) के लिए अभी वही बनी है।

९—अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है, और उसी का प्रभाव उनपर मुख्य रूप से रहा है। शेष सब

विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे हैं।

सुश्री महादेवी वर्मा ने भी अपना व्यक्तिगत विश्लेषण हमें इस प्रकार दिया है—

१— एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या संप्रदाय में न बँधनवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्व-भूमि पर, माँ की पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने बृजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।

२......वाह्यजीवन के दुःखों की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा......

३—तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थी, अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृङ्गारमयी अनुरागमयी भारतजननी भारतमाता', 'तेरी उतारूँ आरती, मा भारती!' आदि रचनाओं की सृष्टि की।

४—इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का अभास देने लगा।

५—मेरी काव्य-जिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य और दर्शन में सीमित रही और कुछ संतयुग की रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फैल गई। करुणाबहुल होने के कारण बुद्ध-संबन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।

६—मेरे सपूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धि-प्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्त्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियों में दबे हुए, निर्जीव संस्कारो का भार ढोते हुए और विविध विषमताओं मे सॉस लेने का भी अवकाश न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भावजगत् की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है।

७—निरन्तर एक स्पंदित मृत्यु की छाया मे चलते हुए मेरे अस्वस्थ शरीर और व्यस्त जीवन को जब कुछ क्षण मिल जाते है तब वह एक अमर चेतना और व्यापक करुणा से तादात्म्य करके अपने आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करता है।

८—इस बुद्धिवाद के युग मे भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है वह किसी रूढ़ि, धर्म या संप्रदायगत न होकर उस सूक्ष्म सत्ता की परिभाषा है। व्यष्टि की सप्राणता में समष्टिगत एकप्राणता का आभास देती है और इस प्रकार वह मेरे सम्पूर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है जो जीवन के सब रूपों के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है। जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण मे निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता यह दूसरे ही बता सकेंगे, परन्तु हृदय मे तो आज निराशा का कोई स्पर्श नही पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।

९—साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नही है।

१०—बाहर के वैषम्य और संघर्ष से थकित मेरे जीवन को जिन क्षणों मे विश्राम मिलता है उन्हीं को कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मै समय-समय पर उनके (काव्य-मर्मज्ञ पाठकों के) पास पहुँचाती रही हूँ।

११—मेरी कविता यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत

सूक्ष्म की भावक है, अतः उसके उपयोग के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

१२—भौतिकता के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण और हिंसा से जर्जरित जीवन में व्यक्त युग को देखकर स्वयं कभी-कभी मेरा व्यथित मन भी अपनी करुण भावना से पूछना चाहता है 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री'।—परन्तु मेरे हृदय के कोने-कोने मे सजग विश्वास जानता है कि जिस विद्युत के भार से कठोर पृथ्वी फट जाती है, उसी को बादल की सजलता अपने प्राणों का आलोक बनाये घूमती है। अग्नि को बुझाने के लिए हमें, उसके विरोधी उपादानों मे ही शक्तिशाली जल की आवश्यकता होगी, अगारों के पर्वत और लपटों के रेले की नही।

'छायावाद' के सम्बन्ध मे कवियित्री के विचार उपादेय है :

एक—छायावाद ने नये छन्दबंधो में सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था, अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँट कर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओ को कोमलतर कलेवर दिया।

दो—इस युग की प्रायः सब प्रतिनिधि रचनाओं मे किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप भी; परन्तु अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण वे कही सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता, कहीं संवेदन की गहराई, कही कल्पना के सूक्ष्म रंग और कहीं भावना की मर्मस्पर्शिता लेकर अनेक वादों को जन्म दे सकी है।

तीन—यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्य-धारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी थी।

चार—कितने दीर्घकाल से वासनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य का हमारे ऊपर कैसा अधिकार रहा है यह कहना व्यर्थ है। युगो से कवि को शरीर के अतिरिक्त और कही सौन्दर्य का लेश भी नही मिलता था। वह उसी के प्रसाधन के लिए अस्तित्व रखता था। जीवन के निम्न स्तर से होता हुआ यह स्थूल, भक्ति की सात्विकता में भी कितना गहरा स्थान ला सका है यह हमारे कृष्ण-काव्य का शृङ्गार-वर्णन प्रमाणित कर देगा।

यह तो स्पष्ट है कि खड़ी बोली का सौन्दर्यहीन इतिवृत्त उसे हिला भी न सकता था। छायावाद यदि अपने संपूर्ण प्राणवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असंख्य रंग-रूपो मे अपनी भावना द्वारा सजीव करके उपस्थित न करता तो उस धारा को × × × ×। मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को उसके समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकेंगी।

पाँच—छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुआ था, अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हो सका; परन्तु उसकी सौन्दर्य-दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर देना है।

छः—छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धांतों का संचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्यसत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रूप मे ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।

सात—छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा यह निर्विवाद है परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है इस प्रश्न के कई उत्तर हैं।

आठ—छायावाद के जन्मकाल में मध्यम वर्ग की ऐसी क्रांति नहीं थी। आर्थिक प्रश्न इतना उग्र नहीं था, सामाजिक विषमताओं के प्रति हम संपूर्ण क्षोभ के साथ आज के समान जागृत भी नहीं हुए थे और हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर असंतोष का इतना स्याह रंग भी नहीं चढ़ा था। तब हम कैसे कह सकते हैं कि केवल संघर्षमय यथार्थ जीवन से पालायन के लिए ही उस वर्ग के कवियों ने एक सूक्ष्म भावजगत् को अपनाया। हम केवल इतना कह सकते हैं कि उन परिस्थितियों ने आज की निराशा के लिए धरातल बनाया।

ऊप जो कहा गया है, उससे छायावाद काव्य की प्रवृत्तियों का निरूपण इस प्रकार हो सकता है :

१—अभिव्यंजना के कलात्मक नये प्रयत्न ( महा० एक )

२—पाश्चात्य साहित्य और बंगला काव्य का प्रभाव ( महा० तीन, सु० ७ )

३—प्रकृति की ओर स्वाभाविक एवं रहस्यात्मक आकर्षण ( महा० दो, सु० १ )

४—वासनामूलक स्थूल सौन्दर्य हटकर सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ( महा० चार )

५—स्थूल के प्रति प्रतिक्रिया ( महा० पॉच; छः )

६—जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव ( महा० सात )

७—दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन का प्रभाव ( सु० २ )

८—संत-साहित्य एवं बुद्ध का प्रभाव ( महा० ५ )
९—व्यक्तिगत सुख-दुःख ( सु० ४ )
१०—कल्पना-प्रियता ( सु० ६ )
११—पारिवारिक एवं वैयक्तिक प्रभाव ( महा० १ )
१२—वाह्य जीवन के दुःखो का प्रभाव ( वही, २ )
१३—सामाजिक और राष्ट्रीय जागृति का प्रभाव ( वही, ३ )
१४—बुद्धि-प्रसूत चिंतन ( वही, ६ )
१५—अस्वस्थता और व्यस्तता ( वही, ७ )

दोनो कवियों ने 'पलायनवाद' और 'अतृप्त वासना' के आक्षेपों का उत्तर दिया है। ये प्रमुख छायावादी कवि इन दोषो लांछनाओ को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखते है। पंत कहते हैं कि संत और भक्त-साहित्य भी 'पलायनवाद' पर स्थित है और संतो और भक्तो ने भी अपनी अतृप्त आकांक्षाओ को ही भगवान को समर्पित किया है। इस प्रकार ये तो कोई लांछा और अपराध की बात है ही नही। महादेवी को दृष्टि मे छायावाद के आरंभ के दिनों मे आर्थिक समस्याएँ इतनी जटिल नहीं थीं जितनी आज हैं, अतः उनसे भागने का प्रश्न ही नही उठता!

परन्तु जहाँ महादेवी इस काव्य से नितान्ततः संतुष्ट है, वहाँ पंत के काव्य के प्रति दृष्टिकोण मे महान परिवर्तन हो गया है। 'आधुनिक कवि : सुमित्रानंदन पंत' की कवि की भूमिका इनकी प्रगति-शीलता को स्पष्ट कर देती है। उन्होने ठीक ही कहा है—'(छायावाद) के पास भविष्य के लिये उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।' "वह नए युग की सामाजिकता और विचार-धारा का समावेश नहीं कर सकता था।" परन्तु इतना होते हुए भी हिंदी काव्य

में आमूल क्रांति करने का श्रेय 'छायावाद' को है, उसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत है, यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता।

प्रसाद के काव्य मे 'छायावाद' की उपरोक्त कितनी ही प्रवृत्तियाँ मिलती हैं और कितनी ही नवीन प्रवृत्तियों के वे प्रवर्तक है। 'कामायिनी' के प्रकाशन ने हमे कम से कम एक काव्य ऐसा दिया है जिसके संबंध मे यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। इस ग्रंथ मे प्रसाद ने जीवन की सर्वांगीण व्याख्या की है और ऐसे सूत्र छोड़े हैं जो भावी जीवनादर्श के निर्माण मे सहायक हो सकेंगे। अभिव्यंजना के कलात्मक नए प्रयत्नों की ओर प्रसाद का ध्यान सब छायावादी कवियो से अधिक था, अत: इस क्षेत्र में उनके सचेष्ट, जागरूक प्रयत्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कवि जयशंकर प्रसाद ने हिंदी-काव्य-क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जब सारा काव्य द्विवेदीयुग की जड़ता और इतिवृत्तात्मकता से निष्क्रिय और निष्प्राण हो रहा था। १६००-२१ तक का काव्य मूलत: नैतिकवादी है। नारी-सौन्दर्य, प्रेम, कल्पना-विलास, जीवन के आनन्द का स्वच्छन्द प्रकाशन, इनका इस काव्य मे जरा भी स्थान नहीं है। नए खड़ीबोली काव्य को गढ़ने के लिए आचार्य द्विवेदी ने मराठी काव्य को अपना आदर्श माना था। आधुनिक भारतीय भाषा के काव्यों मे मराठी का काव्य सबसे अधिक पुरातनवादी है। वही संस्कृत के वृत्त, वही रुक्ष पदावली, वही नैतिकवाद। इसका फल यह हुआ कि हिंदी की द्विवेदीयुग की कविता को अच्छा नेतृत्व न मिला और वह जड़ रूढ़ि बन गई। श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण के काव्य को छोड़ कर उसमें क्या धरा था। स्वयं श्रीधर पाठक अंग्रेजी के १८वीं सदी के कवि गोल्डस्मिथ, पोप, ड्राइडन आदि से प्रभावित है। प्रत्येक युग का साहित्य उसके युग के अनुरूप होता है। १६वीं शताब्दी

के अंतिम दशक और बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक अति-नैतिकवादी थे। क्रांति का कहीं नाम न था। रूढ़ियों-परंपराओं का समर्थन जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता समझा जाता था। इसी से कवियों की दृष्टि आचारवादी १८वीं शती के क्लासिकल काव्य और मराठी कविता तक सीमित रही।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत होते-होते देश बंगला काव्य से परिचित हो रहा था। माइकेल, बिहारीलाल, हेमचन्द्र और रवीन्द्र हिंदी प्रदेश में भी पहुँचे। इनमें रवीन्द्र की कविता पर अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद, उपनिषदों के रहस्यवाद, बंगला भावुकता और वैष्णवभक्ति का प्रभाव था। १९१३ के आस-पास उनके काव्य के अनुकरण से ये प्रभाव भी हिंदी में आ गये। परन्तु रवीन्द्र ने अकेले छायावादी काव्य को जन्म दिया, यह कहना अत्युक्ति होगी। १९०० के बाद से ही 'सरस्वती' में कीट्स शेली, वर्डसवर्थ, ब्लैक आदि रोमांटिक कवियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे थे इन अनुवादों ने अनुवादकर्त्ताओं और लेखकों को प्रभावित किया। दूसरे, अंग्रेजी की उच्च कक्षाओं में रोमांटिक काव्य पढ़ाया जाने लगा था और नए हिन्द के कवि इससे अपरिचित नहीं रह सके। 'पंत' द्वारा अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का प्रभाव मुख्य रूप से हिन्दी में आया। 'पंत' और 'निराला' दोनों रवीन्द्र के काव्य से प्रभावित हैं। 'पंत' के 'पल्लव' और निराला की कितनी कविताओं में रवीन्द्र के स्वर बोल उठे हैं। निराला ने विवेकानंद के अद्वैत भक्ति के काव्य से भी स्फूर्ति ली। 'प्रसाद' ने रवीन्द्र की 'गीतांजलि' के प्रभाव को ग्रहण किया। 'झरना' की कविताएँ इसका उदाहरण है। परन्तु उन्होंने इस प्रभाव को शीघ्र ही छोड़ दिया। उर्दू काव्य की व्यंजना शैली और भावुकता एवं संस्कृत मुक्तकों एवं आचार्यों की स्थापना से इंगित लेकर उन्होंने अपने लिए एक विशिष्ट काव्य-शैली का निर्माण किया।

# लेखक की अन्य रचनाएँ

## उपन्यास

अंबपाली

## काव्य

ताण्डव

## निबंध

प्रबंध-पूर्णिमा

निबंध-प्रबोध

## आलोचना

सूरदास : एक अध्ययन

तुलसीदास : ,, ,,

कवि प्रसाद : ,, ,,

कबीर : ,, ,,

प्रेमचंद : ,, ,,

## इतिहास

हिंदी साहित्य : एक अध्ययन